क़ुरआन मजीद का परिचय

मौलाना सदरुद्दीन इस्लाही

अनुवादक

डॉ० कौसर यज़दानी नदवी

विषय-सूची

१.	आमुख	४
२.	क़ुरआन मजीद की हैसियत	६
३.	क़ुरआन के किताबे इलाही होने के सुबूत	८
	क़ुरआन और दूसरी आसमानी किताबों का संबंध	४५
	क़ुरआन की कुछ प्रमुख विशेषतायें	४९
	क़ुरआन पढ़ना—एक जिम्मेदारी	६०
४.	क़ुरआन, कैसे उतरा और संकलित हुआ?	६४
	उतरने की स्थिति	६५
	क़ुरआन का संकलन	७२
	संकलन का इतिहास	७७
५.	सुरक्षित किताब	८७
	सुरक्षित होने का अर्थ	८७
	क़ुरआन की 'सुरक्षा' का प्रश्न	८८
	क़ुरआन की सुरक्षा का व्यावहारिक प्रबन्ध	९०
	क़ुरआन के सुरक्षित होने की दलीलें	९४
६.	वर्णन-शैली	११५
	अछूती वर्णन-शैली	११५
	अछूतेपन के कारण	११७
	विषयों की 'तक़रार'	१२२
७.	क़ुरआन और उसके हिस्से	१२५
	सूरः	१२७
	आयत	१३३
	पारे और रुकूअ	१३५
८.	अहम पारिभाषिक शब्द	१४०
	अल्लाह	१४०
	नबी और रसूल	१६०
	वह्य	१६५
	फ़रिश्ते	१७२
	इस्लाम	१७५
	मोमिन और मुस्लिम	१७८
	कुफ़्र और काफ़िर	१८२
	शिर्क और मुश्रिक	१८५
	'किताब वाले'	१८६

अल्लाह के नाम से जो रहमान रहीम है

आमुख

क़ुरआन मजीद इस ज़मीन पर अल्लाह की सबसे बड़ी नेमत है क्योंकि क़ुरआन ने इन्सान की बुनियादी आवश्यकता की पूर्ति की है। वह आवश्यकता है जीवन-यापन के ऐसे मार्ग की जानकारी जिस पर चल कर आदमी इन्सान बन सके, एक संतुलित और न्यायपूर्ण समाज की स्थापना हो सके और आख़िरत में कामियाबी मिले। क़ुरआन की इस अहमियत का तक़ाज़ा यह है कि मानव जाति का एक-एक व्यक्ति इस महान-ग्रन्थ से परिचित कराया जाए। आम तौर पर लोग समझते हैं कि क़ुरआन से परिचित कराने की यह कोशिश सिर्फ़ इतनी है कि क़ुरआन लोगों तक पहुंचा कर उन्हें इसे पढ़ने को कहा जाए और जब वे तैयार हो जाएं तो क़ुरआन का मतलब समझने में उनकी मदद करदी जाए। मगर क़ुरआन के अध्ययन का मामला इतना सादा नहीं है, क्योंकि क़ुरआन इन्सानी किताब नहीं बल्कि अल्लाह की किताब (ईश्वरीय ग्रन्थ) है। एक मानव रचित पुस्तक को केवल एक पुस्तक की हैसियत से देखा और पढ़ा जाता है लेकिन जो किताब 'ख़ुदाई किताब' होने का दावा करती हो उसके पढ़ने से पहले कुछ प्रश्न स्वाभाविक रूप से मन में पैदा होते हैं। जैसे यह कि क्या यह किताब सचमुच 'ख़ुदाई-किताब' और आसमानी किताब है ? क्या यह ठीक-ठीक उसी रूप में सुरक्षित है जिस रूप में उसके लाने

वाले पैग़म्बर ने उसे दुनिया के सामने पेश किया था ? इसके उतरने का, इसके संकलन का और इसके संरक्षण व प्रसार का इतिहास क्या है ? क़ुरआन मजीद के बारे में भी, जब तक इस तरह के प्रश्नों का उत्तर न मिल जाए, किसी ऐसे व्यक्ति के अन्दर क़ुरआन के अध्ययन का चाव मुश्किल ही से पैदा हो सकता है जो क़ुरआन के प्रति पहले से श्रद्धा भाव न रखता हो।

यह पुस्तक इसी ज़रूरत को पूरा करने के लिए लिखी गई है। इसके लिखने का मक़सद यह है कि लोग क़ुरआन के अध्ययन के महत्व को महसूस करलें और उसका हक़ अदा करने की कोशिश करें। यह पुस्तक मुसलमानों से ज़्यादा ग़ैर-मुस्लिम भाइयों की ज़रूरत को सामने रखकर तैयार की गई है, इसलिए इसमें कुछ ऐसी बातें भी आ गई हैं जो मुसलमानों के लिए ज़रूरी नहीं हैं मगर क्योंकि एक ग़ैर-मुस्लिम के लिए उनका जानना बहुत ज़रूरी है इस लिए उन पर चर्चा की गई।

अल्लाह से दुआ है कि जिस उद्देश्य से यह पुस्तक तैयार की गई है वह पूरा हो और लोगों में क़ुरआन के अध्ययन का महत्व और आवश्यकता पैदा होने का यह किताब ज़रिया बने।

सदरुद्दीन इस्लाही

क़ुरआन मजीद की हैसियत

इन्सान, इस संसार को पैदा करने वाले और उसके मालिक के रूप में एक सबसे ऊंची हस्ती का विचार और विश्वास सदा से रखता चला आ रहा है। अगर वर्तमान युग के कम्युनिस्टों और कुछ नासमझ फ़लसफ़ियों और उनके अन्धे पैरोकारों को छोड़ दिया जाए, तो इतिहास में इस सच्चाई का इन्कार बहुत कम मिल पायेगा। पूरी दुनिया में फैले इस विचार और विश्वास के कारण इन्सानी दिमाग़ में अपने उस पैदा करने वाले और मालिक के बारे में कुछ प्रश्न पैदा होने ज़रूरी थे। जैसे यह प्रश्न कि उस हस्ती से हमारा किस तरह का ताल्लुक़ है ? और क्या उसका पैदा करना और उसका मालिक होना हमसे किस विशेष आचार विचार की पद्धति की मांग करता है ? अगर करता है तो किस पद्धति की ? ये प्रश्न पैदा हुए इस ज़ोर से हुए कि इन्सान उनकी ओर से अपने कान बन्द न रख सका और उसकी अक्ल और उसकी अन्तरात्मा ने जो उत्तर दिया वह यह था कि तुम एक ज़िम्मेदार रचना हो, क्योंकि तुम्हें पैदा करने वाले ने तुम्हे ज्ञान और समझ का एक विशेष गुण प्रदान किया है, भले और बुरे में अन्तर करने की समझ दी है, कार्य और व्यवहार की स्वतन्त्रता दी है, इसलिए बेजान पत्थरों और जानवरों से तुम्हारी हैसियत बुनियादी तौर पर बिल्कुल अलग है। इन विशेष गुणों और शक्तियों का तुम्हारे अन्दर पाया जाना इस बात का पक्का सुबूत है कि तुम्हारा पैदा करने वाला तुम्हें किसी ख़ास रवैये पर कारबन्द देखना चाहता है,

हालांकि तुम्हें अपनी पसन्द के रास्ते पर चलने की पूरी आज़ादी है, लेकिन इस आज़ादी का सही इस्तेमाल यह नहीं है कि बुद्धिहीन पशुओं की तरह जो जी में आये, करते जाओ, बल्कि यह है कि केवल वही कुछ करो, जो तुम्हारे इंसान होने के अनुरूप हो, जो ठीक और सही हो और जिसे ख़ुद तुम्हारे पैदा करने वाले और मालिक की ओर से ठीक और सही होने की सनद हासिल हो।

बुद्धि और अन्तरात्मा के इस उत्तर ने स्वाभाविक रूप से मनुष्य को इस बात का ज़रूरतमन्द बना दिया कि 'सही' और 'ग़लत' दोनों उसके सामने अनिवार्य रूप से पूरी तरह स्पष्ट रहे, जीवन के हर क्षेत्र में उसे पूरे यक़ीन के साथ मालूम हो कि किस ओर जाना उसके मालिक के नज़दीक सही और पसन्दीदा है और किस ओर जाना ग़लत और ना-पसन्दीदा है ? इस स्थिति ने अब यह समस्या खड़ी कर दी कि मनुष्य की यह ज़रूरत, सबसे महत्वपूर्ण और वास्तविक ज़रूरत कैसे पूरी हो ? उसे 'सही' और 'ग़लत,' 'पसन्दीदा' और 'ना-पसन्दीदा' का ज्ञान-स्पष्ट और पूर्ण ज्ञान-कहां से और किससे मिलेगा ? जहां तक उसकी अपनी क्षमताओं का सम्बन्ध था, वे उसकी यह ज़रूरत पूरी करती नज़र न आईं। इस मामले में न तो उसकी प्रकृति ने कोई सहायता की, बल्कि वह बेचारी तो इस समस्या को समझ भी न सकी, न उसके विवेक और न उसकी बुद्धि ने कोई ख़ास साथ दिया और उन्हें भी कुछ ही दूर चलने के बाद अपनी मजबूरी का एलान कर देना पड़ा। इसका अर्थ यह था कि इस आसमान के नीचे कोई ऐसी शक्ति नहीं, जो इस समस्या को हल कर सके, ज्ञान का कोई ऐसा साधन नहीं, जिससे इस प्रश्न का वास्तविक उत्तर मिल सके। यह स्थिति खुद यह बात बता रही थी कि इस समस्या का हल और इस प्रश्न का वास्तविक उत्तर आसमान के नीचे नहीं, बल्कि

उसके 'ऊपर' ही से मिल सकता है। ऐसी हालत में इंसान के उस पैदा करने वाले और पालनहार से, जिसने उसकी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये इतना बड़ा कारख़ाना बना रखा है, और जिसने इस सिलसिले की ज़रूरी शक्तियों और स्वाभाविक 'हिदायतों' से उसे पूरी तरह नवाज़ दिया है, यहां तक कि वह उसे पैदा ही उस 'हिदायत' के साथ करता है कि वह अपना जीवन किस तरह बाक़ी रखे और इस के लिए अपनी मां के सीने से दूध किस तरह चूसे-ऐसे सब कुछ जानने वाले और ऐसे दयावान व कृपाशील, पैदा करने वाले और पालनहार से यह कैसे सम्भव था कि वह उस की इस सबसे बड़ी ज़रूरत की ओर से मुख मोड़ लेता? निश्चय ही यह उसकी शान के ख़िलाफ़ बात थी। उसकी तत्वदर्शिता, उसकी दया, उसकी कृपा, उसका न्याय मतलब यह कि उसका एक-एक गुण इसे असम्भव बता रहा था। संसार में आसमानी हिदायतनामों (ईश-ग्रन्थों) और किताबों का वजूद, जिससे वह कभी ख़ाली न रहा, इसी सत्य का पता देता है।

क़ुरआन के किताबे इलाही होने के सुबूत

आज आसमानी हिदायतनामों के नाम से संसार में जो ग्रन्थ मौजूद हैं, उनमें से एक 'क़ुरआन' भी है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह सबसे बाद की किताब और सबसे आख़िरी हिदायतनामा है। आगे की पंक्तियों में इसी किताबे इलाही का पूरा परिचय दिया जा रहा है।

लेकिन इस परिचय से पहले ज़रूरत इस बात की है कि इस किताब की सही हैसियत और इसके किताबे इलाही होने का सुबूत

मालूम हो जाये। किसी पुस्तक के बारे में अगर यह दावा किया जाता हो कि वह आसमानी किताब है, तो इससे यह ज़रूरी नहीं हो जाता कि वास्तव में वह आसमानी किताब है। दावे जहां सही बात के किये जाते हैं, वहीं ग़लत बात के भी किये जाते हैं। धर्मों के इतिहास में ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं कि जिस तरह नबूवत और वह्य उतरने के झूठे दावेदार पैदा हुये, वैसे ही कितने ही धर्म गुरुओं को ख़ुदा का पैग़म्बर बल्कि ख़ुदा तक बना दिया गया और उनकी वाणी ईश-वाणी बना दी गई। हालांकि न उन्होंने कभी अपने पैग़म्बर होने का दावा किया था, न अपनी वाणी को ईश-वाणी कहा था। इन ऐतिहासिक तथ्यों के होते हुये क़ुरआन मजीद के बारे में भी यह प्रश्न ज़रूर उठना चाहिये कि आख़िर इस किताब के किताबे इलाही होने का सुबूत क्या है ? और सही बात तो यह है कि क़ुरआन का सबसे बड़ा परिचय भी यही है कि उसका किताबे इलाही होना एक ऐसा तथ्य बन कर लोगों के सामने आ जाये जिससे इनकार न किया जा सके।

क़ुरआन मजीद के किताबे इलाही होने के प्रमुख प्रमाण ये हैं...

पहला सुबूत

पहला सुबूत तो यह है कि यह क़ुरआन का अपना खुला बयान है, केवल उसके मानने वालों का दावा नहीं है। उसने यह बात बार-बार कहा है कि मैं किसी इन्सान का कलाम नहीं, बल्कि अल्लाह, संसारों के पालनहार का कलाम हूं, जिसे उसने अपने ख़ास फ़रिश्ते, जिबरील के ज़रिये अपने बन्दे, मुहम्मद (सल्ल०) तक पहुंचाया था, जैसा कि क़ुरआन में है:-

'इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह (क़ुरआन) संसारों के पालनहार का उतारा हुआ है। इसे अमानतदार फ़रिश्ते ने (ऐ मुहम्मद!) तुम्हारे दिल पर उतारा है, ताकि तुम (लोगों को

आख़िरत के अज़ाब से) ख़बरदार करने वाले बनो, साफ़-सुथरी अरबी भाषा में।' -शूअरा १९२ - १९५

क़ुरआन का अपने बारे में यह बयान देना भी, कि मैं अल्लाह की किताब हूं, एक दावा ही है और इससे उसका किताबे इलाही होना साबित नहीं हो जाता। लेकिन इसके बावजूद, इस बयान की हैसियत सुबूत की भी है, क्योंकि इसके बिना सुबूत और दलील की बात आगे बढ़ ही नहीं सकती, बल्कि यों कहिए कि शुरू भी नहीं हो सकती। इसलिये यह बयान वह आधार कहा जा सकता है, जो क़ुरआन मजीद के बारे में किताबे इलाही होने के दावे को नियमित और ध्यान देने योग्य बनाता है और इसी आधार पर यह दावा विचार करने योग्य बन जाता है, जिसके दो बड़े महत्वपूर्ण और सैद्धान्तिक कारण हैं:-

एक तो यह है कि अल्लाह की ओर से आने वाली किताब कोई साधारण पुस्तक नहीं होती कि उसकी बातों से सहमत या असहमत होने में लोग स्वतंत्र हों, यहाँ तक कि सिरे से उसके पढ़ने के भी पाबन्द न हों, बल्कि वह वास्तव में सृष्टि के शासक की ओर से लागू होने वाला आदेश होता है और इस मांग के साथ आता है कि इसके आगे गरदनें झुका दी जायें, इसका निःसंकोच भाव से पालन किया जाये, और अवश्य ही किया जाये, वरना मनुष्य के लिये तबाही ही तबाही होगी। स्पष्ट है, जिस पुस्तक का रूप, महत्व और हैसियत यह हो, बिल्कुल अनिवार्य है कि वह ख़ुद अपनी ज़ुबान से अपनी इस हैसियत का स्पष्ट और खुले लफ़्ज़ों में एलान कर दे। इसके बिना, वह उसूली तौर से इस बात की कभी अधिकारी न होगी कि लोग उसे अवश्य ही पढ़ें, उसकी हैसियत पर निश्चित रूप से विचार करें, उसके बारे में इस बात की हर हाल में छान-बीन करें कि वह किताबे इलाही है या नहीं और

फिर उसे अपने असल मालिक का हुक्म और आसमानी हिदायतनामा मान कर उसकी पैरवी करें-ठीक उसी तरह, जिस तरह सरकारें अपने क़ानूनों को गज़ट में छाप कर इस बात की घोषणा करती हैं कि देशवासियों के लिये इस समय ये नियम बनाये गये हैं और जब तक वे ऐसा नहीं करतीं, जनता पर उसके बारे में कोई ज़िम्मेदारी नहीं आती।

दूसरे यह कि किसी पुस्तक के किताबे इलाही होने का दावा वास्तव में उसका अपना (या उसके लाने वाले पैग़म्बर का) दावा होता है, न कि उसके मानने वालों का। वह तो इस दावे को मानते ही हैं। इसलिये उनका यह कहना कि वह पुस्तक किताबे इलाही है, इस दावे की केवल एक गवाही हो सकती है, न कि असल दावा। और किसी गवाही का सवाल पैदा उसी समय हो सकता हैं, जबकि बाक़ायदा कोई दावा सामने आ चुका हो। इसके बिना गवाही बिल्कुल बे-मौक़ा, बे-ज़रूरत और ध्यान न देने योग्य होगी, क्योंकि यह भी सम्भव है कि गवाही एक ऐसे दावे की दी जा रही हो, जिसका वास्तव में वजूद ही न हो और एक ऐसे व्यक्ति को ख़ुदा का पैग़म्बर और एक ऐसी पुस्तक को अल्लाह की किताब होने की गवाही दी जा रही हो, जिस ने स्वयं इस तरह का कोई दावा कभी न किया हो। धर्मों के इतिहास पर नज़र डालिए, तो मालूम होगा कि इस सम्भावना को लोगों की अनावश्यक श्रद्धा ने बार-बार 'वास्तविक' बनाने की कोशिश की है। पुस्तक में एक वाक्य भी ऐसा नहीं, जिसमें यह दावा किया गया हो कि मैं आसमानी किताब हूं, मगर लोगों ने ख़ुद अपनी ओर से यह दावा गढ़ लिया और एक इन्सानी कलाम को ख़ुदा का कलाम बना कर रख दिया।

इन कारणों से आवश्यक है कि क़ुरआन के 'किताबे इलाही' होने की बहस के संबंध में यह देखा जाये कि वह खुद अपने बारे में अपनी ज़ुबान से इस बात का खुला दावा करता है या नहीं। अगर करता है, तो इस बहस को आगे बढ़ाया जाए, वरना नहीं। इस लिए क़ुरआन का अपना यह खुला बयान है कि मैं अल्लाह का उतारा हुआ हूं, बड़ी बुनियादी अहमियत रखता-है और इसकी हैसियत भी एक सुबूत की हो जाती है।।

दूसरा सुबूत

क़ुरआन और उसके लाने वाले पैग़म्बर के आने का उल्लेख और उसका एलान पिछली आसमानी किताबों (तौरात और इन्जील) में 'शुभ-सूचना' के रूप में पहले ही से हो चुका था और यह ठीक उन्हीं गुणों और निशानियों के साथ संसार में प्रकट हुआ, जो इन किताबों में उसके लिए बताए गये थे। क़ुरआन में इस शुभ-सूचना को बार-बार एक खुली दलील के रूप में पेश किया गया है। जैसेः-

'यह (क़ुरआन) कोई गढ़ी हुई (और मानव) वाणी नहीं है, बल्कि (अल्लाह की वाणी है और) पिछली आसमानी किताबों की भविष्यवाणियों के ठीक अनुसार है।' -यूसुफ़ : १११

'जो इस उम्मी (अपढ़) रसूल और नबी की पैरवी अपनायें, जिसका उल्लेख वे अपने यहां तौरात और इन्जील में लिखा हुआ मौजूद पा रहे हैं।' -आराफ़-१५७

तौरात या इन्जील में यह शुभ-सूचना या भविष्यवाणी कहां-कहां और किन शब्दों में थी ? इस प्रश्न का सही और पूर्ण उत्तर उसी समय मिल सकता था, जब वे किताबें आज भी अपने मूल रूप में मौजूद होतीं और इनमें कोई कमी-बेशी और तब्दीली

न हुई होती। मगर ऐतिहासिक दृष्टि से यह एक अटल सत्य है कि ये किताबें ठीक उन्हीं शब्दों और वाक्यों में सुरक्षित नहीं रह गई हैं, जिनमें वे अल्लाह की ओर से उतरी थीं, बल्कि उनके नामलेवाओं ने उनमें काफ़ी फेरबदल कर डाला है। ऐसी स्थिति में, स्पष्ट है कि वे भविष्यवाणियां और शुभ-सूचनायें भी अपने-मूल रूप में बाक़ी नहीं रह सकती थीं, जो क़ुरआन और साहिबे क़ुरआन सल्ल० के बारे में इन किताबों में उतरी थीं। क्योंकि इन किताबों के मानने वालों को क़ुरआन और रिसालते मुहम्मदी की सच्चाई साबित हो जाना किसी हाल में भी पसन्द न था। लेकिन इन सब बातों के बावजूद उनके भीतर आज भी ऐसे वाक्य मिल जाते हैं, जिन में एक विशेष किताब और एक ख़ास शान के रसूल के आने की खुली भविष्यवाणियों का उल्लेख है और ये भविष्यवाणियां अगर किसी पर पूरी उतरती हैं, तो वह क़ुरआन मजीद और मुहम्मद सल्ल० ही हैं। उदाहरण के तौर पर नीचे के कुछ वाक्य देखिये:-

१. 'ख़ुदावन्द सीना से आया और शाईर से उन पर ज़ाहिर हुआ। उसने 'फ़ारान पर्वत' से दर्शन दिए और लाखों क़ुदसियों (पवित्रजनों) में से आया। उसके दाहिने हाथ पर उनके लिए 'आतशीं (आग वाली) शरीअत' थी। -इस्तिस्ना अध्याय ३३

२. 'मैं उनके लिए 'उन्हीं के भाइयों में से 'तेरी तरह' एक नबी उठाऊंगा और अपना कलाम उसके मुंह में डालूंगा-और जो कोई मेरी इन बातों को, जिनको वह मेरा नाम लेकर कहेगा, न सुनेगा, तो मैं उनका हिसाब उससे लूंगा।'

-इस्तिस्ना अध्याय १८, आयतें १८-१९

३. 'यसूअ ने उनसे कहा, क्या तुमने पाक किताब में कभी नहीं पढ़ा कि 'जिस पत्थर को राजगीरों ने रद्द किया,' 'वही कोने के सिरे का पत्थर हो गया।' यह ख़ुदावन्द की ओर से हुआ और हमारी नज़र में अजीब है। इसलिए मैं तुम से कहता हूं कि 'ख़ुदा की बादशाही' तुम से ले ली जाएगी और उस क़ौम को, जो उसके 'फल लाये,' दे दी जायेगी और जो इस पत्थर पर गिरेगा, टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा, लेकिन जिस पर वह गिरेगा उसे पीस डालेगा।' -मत्ता की इन्जील, अध्याय २१, आयतें ४२-४३

४. 'मुझे तुम से और भी बहुत सी बातें कहनी हैं, 'मगर अब तुम उनको सहन नहीं कर सकते,' लेकिन जब वह यानी सच्चाई की रूह आएगा, तो तुम को तमाम सच्चाई की राह दिखाएगा, इस लिए कि वह अपनी ओर से न कहेगा, लेकिन जो कुछ सुनेगा, वही कहेगा और तुम्हें आगे की ख़बरें देगा।'

-यूहन्ना की इन्जील, अध्याय १६, आयतें १२-१३

५. 'देखो, मैं अपने रसूल को भेजूंगा और वह मेरे आगे राह दुरुस्त करेगा, और ख़ुदावन्द, जिसके लिए तुम इच्छुक हो, 'यका-यकी अपनी हैकल में आ मौजूद होगा,' हां 'वचन का रसूल' जिसके तुम आरज़ूमन्द हो आएगा, रब्बुल अफ़वाज (सेनाओं का स्वामी) फ़र्माता है।' -मुलाकी, अध्याय ३ आयत १

६. 'उस समय से यसूअ ने मुनादी करना और यह कहना शुरू किया कि तौबा करो, क्योंकि आसमान की बादशाही क़रीब आ गई है।' -मत्ता, अध्याय ४, आयत १७

७. 'अगर तुम मुझ से प्रेम करते हो, तो मेरे आदेशों का पालन करोगे और मैं बाप से दर्ख़ास्त करूंगा तो वह तुम्हें 'दूसरा

मददगार (या वकील, या सिफ़ारिशी)' बख़्शेगा कि 'आख़िर तक तुम्हारे साथ रहे।' -यूहन्ना, अध्याय १४, आयतें १६-१७

'लेकिन मददगार अर्थात रूहुल्कुद्स, जिसे बाप मेरे नाम से भेजेगा, वही तुम्हें सब बातें सिखाएगा और जो कुछ मैंने तुम से कहा है, वह सब तुम्हें याद दिलाएगा।' (आयत २६) 'और अब मैंने तुम से इसके होने से पहले कह दिया है, ताकि जब हो जाये तो तुम विश्वास करो। इसके बाद मैं तुम से बहुत सी बातें न करूंगा, क्योंकि 'दुनिया का सरदार' आता है और 'मुझ में उसका कुछ नहीं।' (आयत २९-३०) 'लेकिन मैं तुम से सच कहता हूं कि मेरा जाना तुम्हारे लिए फ़ायदेमन्द है, लेकिन अगर मैं न जाऊँ तो वह मददगार तुम्हारे पास न आयेगा, लेकिन अगर जाऊँगा तो उसे तुम्हारे पास भेज दूंगा और वह आकर दुनिया को गुनाह और सच्चाई और अदालत के बारे में दोषी ठहरायेगा।'

-अध्याय १६, आयतें ७-८

८. 'देखो, पुरानी बातें पूरी हो गई और मैं नई बातें बताता हूं, इससे पहले कि घटित हों, मैं तुम से बयान करता हूं। ऐ समुद्र पर गुज़रने वालो और उसमें बसने वालो! ऐ द्वीप समूहो! और उनके निवासियो! 'ख़ुदावन्द के लिए नया गीत गाओ।' धरती पर उसी के गुण गाओ, जंगल और उसमें बसने वाले, 'क़ीदार' के आबाद गांव अपनी आवाज़ बुलन्द करें। 'सुलअ' के बसने वाले गीत गायें, पहाड़ों की चोटियों पर से ललकारें, वे ख़ुदावन्द का जलाल ज़ाहिर करें और द्वीप समूहों में उसके गुण-गान करें। ख़ुदावन्द बहादुर की तरह निकलेगा, वह जंगी मर्द की तरह अपनी ग़ैरत दिखायेगा वह अपने दुश्मनों पर ग़ालिब आयेगा 'मैं बहुत मुद्दत से चुप रहा' मैं पहाड़ और टीलों को उजाड़ दूँगा और अन्धों को उस

राह से, जिसे वे नहीं जानते, ले जाऊँगा। मैं उनको उन रास्तों पर जिन्हें वे नहीं जानते, ले चलूँगा, मैं उनके आगे अंधेरे को प्रकाश और ऊँची-नीची जगहों को बराबर करूँगा। मैं उनसे यह व्यवहार करूँगा और उनको न छोड़ूंगा। जो खोदी हुई मूर्तियों पर भरोसा करते और ढाले हुए बुतों से कहते हैं तुम हमारे देवता हो, वे पीछे हटेंगे और बहुत शर्मिन्दा होंगे।'

-यसअयाह, अध्याय ४२, आयत ९ से १७ तक

तौरात और इन्जील के इन वाक्यों और भविष्यवाणियों पर यहां कोई विस्तृत चर्चा तो नहीं की जा सकती, हां, उनके ख़ास-ख़ास टुकड़ों के बारे में आवश्यक व्याख्याएं निम्न हैं:-

'फ़ारान पर्वत' मक्का में स्थित है। 'आतशीं शरीअत' का अर्थ जिहाद-लड़ाई और प्रभुत्व प्राप्त शरीअत है। 'उन्हीं के भाइयों (अर्थात बनी इसराईल के भाइयों) से तात्पर्य इस्माईल की औलाद हैं, जिनमें हज़रत-मुहम्मद सल्ल० पैदा हुए थे। 'तेरी तरह' का अर्थ यह है कि वह भी तेरी ही (अर्थात हज़रत मूसा ही की) तरह स्थाई ग्रन्थ और शरीअत लाने वाला रसूल होगा। 'जिस पत्थर को राजगीरों ने रद्द किया,' यह इशारा भी बनी इस्माईल की ओर है, क्योंकि जहाँ बनी इसराईल एक लम्बी मुद्दत तक इमामत (नेतृत्व) के पद पर आसीन और किताब व रिसालत वाले रहे, इस बीच ये लोग इस इज़्ज़त से बिल्कुल ही महरूम थे। 'वही कोने का पत्थर हो गया' यानी आख़िर में उसी वंश को इस नेतृत्व-पद को सौंपा गया और आख़िरी किताब, जो अल्लाह की ओर से उतरी, इसी में उतरी। 'ख़ुदा की बादशाही' से मतलब पूरी और आदर्श हुकूमते इलाहिया (ईश्वरीय राज्य) है। 'फल लाएगी' अर्थात अल्लाह के हुक्मों और ख़ुशियों को पूरा-पूरा लागू करेगी और अपनी बरकतें ज़ाहिर करेगी। 'मगर अब तुम उन को सहन

नहीं कर सकते' का अर्थ यह है कि तुम खुदाई हुक्मों की और अधिक अमानत का बोझ उठाने की शक्ति नहीं रखते, इसलिए मेरे ज़रिए अल्लाह अपने धर्म को पूर्ण भी नहीं कर रहा है। 'यकायक अपनी हैकल में आ मौजूद होगा।' अर्थात उस रसूल का आगमन ऐसी जगह और ऐसे लोगों के भीतर होगा, जिससे तुम भौचक्के रह जाओगे। 'वचन का रसूल' में 'वचन' से तात्पर्य 'ख़तने का वचन' है, जो इब्राहीम और उनकी नस्ल से लिया गया था (जैसा कि किताब पैदाइश अध्याय १७, आयत १० में व्याख्या की गई है) इसलिए 'वचन का रसूल' का अर्थ होगा, ऐसा रसूल जो ख़तने की इब्राहीमी सुन्नत को दुनिया में आम करेगा। और यह रस्म उसकी शरीअत की और उसकी उम्मत की एक जानी-पहचानी निशानी होगी। 'मददगार' जिस मूल इब्रानी शब्द का अनुवाद है, उसका अरबी इन्जील में अनुवाद 'फ़ारक़लीत' किया गया है और फ़ारक़लीत का अर्थ लगभग वही है जो शब्द 'मुहम्मद' या 'अहमद' का है। 'आख़िर तक तुम्हारे साथ रहे' का अर्थ बिल्कुल खुला है और वह यह कि उसकी लाई हुई शरीअत और किताब तौरात और इन्जील की तरह एक सीमित युग के लिए नहीं, बल्कि सदा के लिए है। 'दुनिया का सरदार' यानी सारी दुनिया और तमाम इन्सानों के लिए अल्लाह का रसूल, न कि सिर्फ़ किसी ख़ास क़ौम या देश के लिए। 'मुझ में उस का कुछ नहीं' अर्थात मेरे (ईसा के) मुक़ाबले में वह बहुत-ऊंचा और श्रेष्ठ रसूल होगा। 'खुदावन्द के लिए नया गीत गाओ'-का अर्थ यह है कि पूरी दुनिया और उसके सारे जल-थल के लिए एक नई किताब और एक नई शरीअत आने वाली है। 'क़ीदार' बनी इस्माईल में एक प्रसिद्ध व्यक्ति हुआ है, हज़रत मुहम्मद सल्ल० भी उसी नस्ल में पैदा हुए। 'सुलअ' मदीना के नज़दीक की एक पहाड़ी का नाम है।

'मैं बहुत मुद्दत से चुप रहा' यानी एक लम्बी मुद्दत तक वह्य और रिसालत का सिलसिला रुका रहा-

आशा है कि ये संक्षिप्त व्याख्यायें इन वाक्यों का वास्तविक उद्देश्य मालूम कर लेने की कोशिश में काफ़ी सहायक सिद्ध होंगी, जिसके बाद हर सदाचारी और सत्य-प्रेमी व्यक्ति के सामने यह वास्तविकता पूरी तरह स्पष्ट हो जाएगी कि तौरात और इन्जील की इन भविष्यवाणियों में जिस किताब और जिस नबी के आने की शुभ-सूचनायें दी गई हैं, वह निश्चित रूप से क़ुरआन और हज़रत मुहम्मद सल्ल० ही हैं। इसी लिए जब क़ुरआन उतरा तो यहूदी और ईसाई विद्वानों को यह समझने में ज़रा भी कठिनाई नहीं हुई कि यह वही किताब है, जिसके हम इन्तिज़ार में थे और जिसके बारे में हमें लगातार बशारतें दी जाती रही हैं, जैसा कि क़ुरआन मजीद में अल्लाह ने फ़र्माया है:-

'जिन लोगों को हमने अपनी किताब (तौरात) दी है, वे जानते हैं कि निश्चित ही यह (क़ुरआन) तुम्हारे रब की ओर से हक़ के साथ उतारा गया है।' -अनआम : ११५

'यह कि बनी इसराईल के उलेमा इस (क़ुरआन) को जानते-पहचानते हैं।' -शुअरा : १९७

इनमें, जो सही मायनों में 'उलेमा' थे और जिनके दिलों में अल्लाह के भय और सत्य के प्रेम पर साम्प्रदायिक विद्वेष हावी नहीं हो सका था, वे निस्संकोच इस किताबे इलाही से आ चिमटे और जब उनके सामने क़ुरआन की दावत आयी, तो ऐसा लगा मानो यह उनकी अपनी ही जानी-चाही पूंजी थी, जो उन्हें दी जा रही है। क़ुरआन मजीद में इस ऐतिहासिक वास्तविकता को इन शब्दों में व्यक्त किया गया है:-

'तो वे लोग, जिन्हें हमने (सही अर्थों में) किताब दी थी, उस (क़ुरआन) पर ईमान ला रहे हैं।' -अनूकबूत, ४७

'और ये (भले ईसाई) जब अल्लाह के रसूल पर उतरने वाले कलाम (क़ुरआन) को सुनते हैं, तो तुम देखते हो कि उनकी आंखें हक़ की मारफ़त (सत्य-ज्ञान) पा लेने के कारण आंसुओं से बोझिल हो जाती हैं। वे कहते हैं, हे अल्लाह! हम इस पर ईमान लाए, तो तू हमें (भी उसके) गवाहों में लिख ले।' -माइदा : ८३

इतिहास इन सत्य-प्रेमियों की जो सूची पेश करता है, वह काफ़ी बड़ी है। इनमें हब्श के शासक नज़ाशी, उनके भतीजे जूमुख़्मिर, फ़लस्तीन के रूमी गवर्नर और पादरी इब्ने नातूर, नजरान के ईसाई शासक के भाई कुर्ज़ इब्न अल्क़मा, क़बीला बनी तै के सरदार अदी इब्न हातिम, तौरात के प्रसिद्ध विद्वान कअब अल-अहबार, वहब इब्न मुनब्बिह और अब्दुल्लाह इब्न सलाम रज़ि० जैसे लोग भी शामिल हैं। इन अनगिनत यहूदियों और ईसाइयों का क़ुरआन पर ईमान लाना ख़ुद इस बात का एक बोलता सुबूत है कि ये सब तौरात और इन्जील में बयान की गई सूचनाओं के मुताबिक़ था, क्योंकि ये लोग पहले ही से किताब और शरीअत के जानकार थे। क़ुरैश आदि की तरह 'बे-किताब' न थे कि अपनी इस कमी और महरूमी को दूर करने के लिए क़ुरआन को किताबे इलाही मान लेते। इस लिए अगर उन्होंने तौरात और इन्जील की जगह अब क़ुरआन की पैरवी इख़्तियार कर ली और मूसाई या मसीही समुदाय से अपने भावनात्मक सम्बन्ध काट कर 'उम्मते मुहम्मदिया' (मुहम्मदी सम्प्रदाय) के क्षेत्र में शामिल हो गए तो मनोवैज्ञानिक और मानसिक दोनों दृष्टि से, ऐसा इसीलिए सम्भव हो सका कि एक ओर उन्होंने अपनी किताबों में लिखी भविष्यवाणियों को देखा दूसरी ओर क़ुरआन के लाने वाले पर

नज़र डाली और उनके दिल पुकार उठे कि जिस चीज़ की हमें ख़बर दी गई थी, निस्सन्देह वह ज़ाहिर हो चुकी है और फिर उनकी सत्य-प्रियता ने उन्हें इसे अपनाने पर मजबूर कर दिया।

तीसरा सुबूत

क़ुरआन मजीद के भीतर कोई टकराव या विरोधाभास नहीं पाया जाता। उसका यह गुण उसके सत्य होने की एक खुली दलील है, जैसाकि ख़ुद उसने फ़र्माया:-

'अगर यह क़ुरआन अल्लाह के बजाय किसी और की ओर से होता तो वे उसके भीतर बड़ा विरोधाभास पाते।'

-सूर: निसा

और यह इसलिए कि यह किताब २३ वर्ष की मुद्दत में और बड़ी ही कठोर और विकट परिस्थितियों में पूर्णता को पहुंची थी। अगर यह इन्सानी-रचना होती, तो उसके विषय, उसके विचार व दृष्टि-कोण और उसकी शिक्षायें, विरोधाभास से मुक्त नहीं हो सकती थीं। इन्सानी रचना तो आमतौर पर ऐसी हालत में भी उन दोषों से मुक्त नहीं होती, जबकि उसे एक जैसे हालात में, केवल कुछ महीनों के भीतर, और लगातार लिखा गया हो। फिर जिस किताब के पूर्ण होने में सैंकड़ों महीने और हज़ारों दिन बीते हों, और जिसे हालात के ग़ैर-मामूली उतार-चढ़ाव का सामना करना पड़ा हो, उसके भीतर विरोधाभास का मौजूद न होना कैसे सम्भव है? मगर हम देखते हैं कि क़ुरआन के भीतर यह 'असम्भव' खुले तौर पर सम्भव बन कर एक वास्तविकता के रूप में मौजूद है और इसके फैले हुये विषयों और विस्तृत आदेशों व निर्देशों में उच्च स्तर की एकरूपता पाई जाती है। इसका अर्थ इसके सिवा और क्या हो सकता है कि इसका 'रचयिता' कोई इन्सानी हस्ती नहीं,

बल्कि वह जानने वाली, ख़बर रखने वाली और सारी ताक़तों की मालिक हस्ती है, जिस का ज्ञान विरोधाभास का शिकार हो ही नहीं सकता और जिसकी बातों में समय की बड़ी से बड़ी दूरी भी कोई टकराव नहीं पैदा कर सकती।

चौथा सुबूत

क़ुरआन ने अपने मिशन के सिलसिले में अनेकों भविष्यवाणियां कीं और आमतौर से ऐसे हालात में कीं, जबकि ज़ाहिर तौर से उनके पूरी होने की कोई उम्मीद न दीखती थी, मगर दुनिया ने उनमें से एक-एक को पूरा होता देखा और कोई भविष्यवाणी भी ग़लत साबित न हुई, जैसेः-

(क) उसने सन् ०६ हि० में हुदैबिया-समझौते के पर मौक़े पर मुसलमानों को यह खुशख़बरी सुनाई थी किः-

'अगर अल्लाह ने चाहा, तो तुम मस्जिदे हराम (काबा) में ज़रूर दाख़िल होगे, पूरे अमन और इत्मीनान के साथ, अपने सिरों को मुंडाये और बालों को कटवाये, इस हाल में कि तुम्हें किसी का कोई डर न होगा। —सूरः फ़त्ह—१७

इन शब्दों में पाए जाने वाले अटूट विश्वास को देखिए, फिर इस हक़ीक़त को याद कीजिए कि ये शब्द उस मौक़े पर कहे गये थे, जब मुसलमानों को मक्का के काफ़िरों से बहुत कुछ दबकर समझौता करना पड़ा था, जब वे अपने धर्म-केन्द्र (काबा) के दरवाज़ों पर पहुंच कर ज़बरदस्ती रोक दिये गये थे और उन्हें उसकी ज़ियारत किये बिना, दिल मसोस कर वापस चला आना पड़ा था। निश्चय ही ये हालात ऐसे न थे कि उनमें मुसलमानों को मक्का में विजयी बन कर प्रवेश करने की आशा दिलाई जा सकती। मगर क़ुरआन ने केवल आशा ही नहीं दिलाई, बल्कि पूरे विश्वास के साथ फ़र्माया कि ऐसा अवश्य होकर रहेगा, यहां तक

कि उसने इस प्रवेश की पूरी तस्वीर भी खींच कर रख दी और फिर दो साल बाद ही ऐसा हो भी गया। मुसलमान ठीक उसी शान के साथ मक्का में दाख़िल हुए, जिसकी सूचना उपरोक्त शब्दों में दी गई थी।

(ख) उसने मुसलमानों से कहा था कि:-

'तुममें से जो लोग सच्चे ईमान वाले और नेक हैं, उनसे अल्लाह का यह वायदा है कि वह उन्हें ज़मीन में ख़िलाफ़त प्रदान करके रहेगा, जिस तरह कि उसने उनसे पहले के लोगों को प्रदान किया था और उनके इस धर्म को निश्चय ही मज़बूती से जमा देगा, जिसे उसने उनके लिए पसन्द फ़र्माया है और उनके भय की स्थिति को शान्ति की स्थिति से अवश्य ही बदल देगा।'

-सूर:नूर:५५

यह बात मुसलमानों से जिस समय और जिन हालात में कही गई थी, उनका स्पष्टीकरण स्वयं उन्हीं शब्दों के भीतर मौजूद है, अर्थात यह कि ये हालात पूरी तरह डर और दहशत से भरे हुए थे, धर्म की जड़ें अभी जम नहीं पाई थीं; सत्ता व प्रभुत्व की महरूमी तो चल ही रही थी-फिर कुछ वर्षों के भीतर ही ये हालात जिस तरह पलट कर रह गए और अरब की ज़मीन-आसमान जिस तरह बदल कर कुछ से कुछ हो गये, उसे पूरी दुनिया जानती है, जो ऊपर की आयत के शब्दों को वास्तविकता का रूप अपनाते अपनी आंखों से देख चुकी है।

(ग) उसने अपने पैग़म्बर सल्ल० के बारे में मदीना के संकटों में घिरे हुये और लड़ाई के ख़तरों से भरे हुये वातावरण में भी एलान किया था कि :-

'अल्लाह तुम्हें सारे लोगों से सुरक्षित रखेगा।'

-सूर:माइद:६७

और मक्का के दहशत और बेबसी के समय में भी इत्मीनान दिलाया था कि :-

'तुम अपने रब के हुक्म पर जमे रहो, क्योंकि तुम हमारी (अर्थात अल्लाह की) निगाहों में हो।' -सूर:तूर:४८

इस सिलसिले में यह बताने की ज़रूरत नहीं कि मक्का के ताक़तवर मुश्रिकों, मदीना के कपटी मुनाफ़िक़ों और साज़िशी यहूदियों और सारे अरब के अनगिनत इस्लाम दुशमनों की इच्छाओं और कोशिशों के बावजूद क़ुरआन की यह इत्मीनान-देहानी एक खुली सच्चाई बन गई और अल्लाह के रसूल के ख़िलाफ़ कोई चाल, कोई साज़िश और कोई कोशिश कामयाब न हो सकी, हालांकि नबूवत के २३ साला दौर में आप कई बार ऐसे ख़तरनाक हालात से गुज़रे, जिसमें आपके जीवन के बाक़ी रह जाने की आशा नहीं की जा सकती थी-ऐसा भी हुआ कि मक्का के कमज़ोरी के दौर में एक परिवार बनी हाशिम के सिवा क़ुरैश के बाक़ी तमाम क़बीलों ने, आपको क़त्ल कर डालने के लिए मिलकर क़दम उठाया, ऐसा भी हुआ कि हिजरत के समय, पीछा करने वाले, उस गुफा के मुहाने पर जा खड़े हुए, जिसमें आप छिपे बैठे थे, ऐसा भी हुआ कि पीछा करते समय एक हथियारबंद दुशमन ने आपको रास्ते में देख लिया, लेकिन आपको पकड़ लेने की कोशिश में उसके घोड़े ने बार-बार ठोकर खाई और उसके क़दम ज़मीन में धंस गये, ऐसा भी हुआ कि यहूदियों ने दावत के बहाने आपको एक ख़ास रास्ते से ले जाना चाहा, ताकि ऊपर से एक भारी पत्थर गिराकर आपको शहीद कर दें, ऐसा भी हुआ कि जंगल में आपको सोते पाकर एक इस्लाम-दुशमन ने आपकी तलवार अपने क़ब्ज़े में कर ली और

विश्वास से बोला, 'बता, अब तुझे मेरे हाथ से कौन बचा सकता है?'-फिर ऐसा भी हुआ कि उहुद और हुनैन की लड़ाइयों में कई-कई हज़ार दुशमनों के बीच आप लगभग अकेले रह गए, मतलब यह कि ऐसे कितने ही मौक़े आए जिनमें इसकी सम्भावना रहती थी कि आप नहीं बच सकेंगे, लेकिन हर मौक़े पर यही देखा गया कि 'तुम हमारी (अर्थात अल्लाह की) निगाहों में हो' का तक़ाज़ा अपनी ज़गह से न टल सका और 'अल्लाह तुम्हें सारे लोगों से सुरक्षित रखेगा' की बात अपनी जगह ज्यों-की-त्यों कायम रही।

(घ) उसने अल्लाह की ओर से अपने बारे में एलान किया था:-

........निश्चय ही हम इस (क़ुरआन) को सुरक्षित रखेंगे।

-सूर:हिज्र:९

यह एलान या भविष्यवाणी जिस तरह एक सच्चाई साबित होती चली आ रही है, कोई इस्लाम-विरोधी भी इसका इन्कार नहीं कर सकता। क़ुरआन जिन लफ़्ज़ों में और जिस रूप में नबी सल्ल० की ओर से पेश हुआ था, आज भी वह ठीक उन्हीं लफ़्ज़ों में और ठीक उसी रूप में पूरी तरह सुरक्षित पाया जा रहा है, जबकि इससे पहले की आसमानी किताबों में से कोई एक भी ऐसी नहीं, जिसके बारे में इस तरह का दावा किया जा सकता हो, दावे की सत्यता का साबित होना तो दूर की बात है। लेकिन क़ुरआन ने अपने बारे में जो ख़बर दी कि मैं सदा सुरक्षित रहूंगा, अब तक का इतिहास गवाही दे रहा है कि यह सूचना ज़रा भी ग़लत न थी।

(ङ.) उसने ईरानी मजूसियों के हाथों से रूमी ईसाइयों की ज़बरदस्त हार पर यह सूचना दी थी कि :-

'रूमी परास्त हो गए हैं, अरब भू-भाग के निकट, लेकिन वे अपनी इस पराजय के बाद, कुछ ही वर्षों में, विजयी हो रहेंगे।'

-सूर:रूम:२-४

सात वर्ष बीतते-बीतते ये किताब वाले रूमी, ईरानी मजूसियों पर वास्तव में विजयी हो गए और इस प्रकार क़ुरआन मजीद की दी हुई यह सूचना इतिहास की एक सच्ची घटना बन गई।

(च) उसने यहूदियों के बारे में उनके सत्य-विरोध के मौक़े पर यह सूचना दी थी कि :-

'...वह (यानी अल्लाह) उन पर क़ियामत तक ऐसे लोगों को मुसल्लत करता रहेगा, जो उन्हें भयानक मुसीबतों में डालेंगे।'

-सूर: आराफ़: १६७

यह जाति एक लम्बे समय से, जिस तरह रह-रह कर ज़लील रुसवा और तबाह बरबाद होती चली आ रही है, वह अपनी मिसाल आप है। कभी आशूरियों ने उन्हें कुचला, कभी बाबिल के शासक बख़्ते नस्र ने उनकी ईंट से ईंट बजा कर रख दी, कभी रूमी राजा टटयुस ने उन्हें बरबाद कर दिया, कभी मुसलमानों के हाथों उन्हें क़त्ल, वनवास और दासता की यातनाएं भुगतनी पड़ीं, कभी हिटलर उन पर क़हर बन कर टूटा, अब आगे जो कुछ होने वाला है, उसे तो अपने समय पर ही देखा जा सकेगा। इस समय तो वर्तमान युग तक के इतिहास ही पर बात की जा सकती है और हर व्यक्ति देख सकता है कि इतिहास यहूदियों की रुसवाइयों और बरबादियों की शिक्षाप्रद घटनाओं से भरा पड़ा है।

इन कुछ महत्वपूर्ण और स्पष्ट भविष्यवाणियों के अलावा क़ुरआन में और भविष्यवाणियां भी मौजूद हैं और इन्हीं की तरह वे सबकी सब एक-एक करके पूरी हो चुकी हैं। यह वास्तविकता इस बात का अचूक प्रमाण है कि यह भविष्यवाणियां करने वाला ग़ैब (प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष, भूत-भविष्य) का पूरा और सही ज्ञान रखता था, वरना यह सम्भव न था कि वे यों, सब-की-सब सच निकलतीं, और उनमें से कोई एक भी ग़लत साबित न होती।

आख़िर संसार में नजूमी और काहिन भी भविष्यवाणियाँ करते हैं, मगर किसी एक भी ऐसे नजूमी या काहिन का नाम नहीं लिया जा सकता, जिसकी सारी की सारी भविष्यवाणियां सही निकलती रही हों। होता यह है कि अगर उनकी एक भविष्यवाणी सही निकल आई तो चार ग़लत साबित हो गईं, जिसका कारण भी बिल्कुल स्पष्ट है और वह यह कि उनकी भविष्यवाणियां केवल अटकल और अनुमान पर आधारित होती हैं और ज़ाहिर है कि भविष्य के बारे में होशियार से होशियार इन्सान के अनुमान भी सदैव सही नहीं हो सकते। अब अगर क़ुरआनी भविष्यवाणियों का हाल इससे भिन्न रहा और वे सब-की-सब सच ही साबित हुई हैं तो यह इस बात की खुली दलील है कि इन का आधार इन्सानी अटकलों पर कभी नहीं था, बल्कि ग़ैब की स्पष्ट और सही जानकारी पर था, अर्थात वे किसी मनुष्य की ओर से न की गई थीं, बल्कि ख़ुदा की ओर से की गई थी, जिसके सिवा ग़ैब का स्पष्ट और वास्तविक ज्ञान किसी और को प्राप्त ही नहीं-दूसरे शब्दों में ये भविष्यवाणियां जिस किताब में बयान की गई हैं, वह हरगिज़ कोई मानव-रचना नहीं, बल्कि निश्चित रूप से ख़ुदाई कलाम (ईशवाणी) है।

पाँचवाँ सुबूत

क़ुरआन मजीद के किताबे इलाही होने का पाँचवाँ सुबूत यह है कि उसने पिछले नबियों के हालात को इस तरह बयान किया है, जैसे कोई आंखों-देखा हाल बताता है। ये हालात ज़्यादातर ऐसे हैं, जिन्हें इससे पहले न आप सल्ल० जानते थे, न आप के देश और जाति वालों में इनकी कोई चर्चा थी। क़ुरआन ने कुछ किस्सों को बयान करके अन्त में कहा भी है कि, 'इस पूरी घटना को आज से पहले न तुम जानते थे, न तुम्हारी जाति जानती थी।' (सूरः हूदः

४९) फिर ये नबी, जिनके हालात, क़ुरआन ने अपनी मसलहतों के तहत जगह-जगह बयान किए हैं, अधिकतर बनी इस्राईल के नबी थे। ये बनी इस्माईल अर्थात अरब जाति से ताल्लुक़ रखने वाले न थे कि इस जातीय व नस्ली ताल्लुक़ के आधार पर इस जाति को उनसे दिलचस्पी होती और अपने इतिहास और परम्पराओं में वह उन्हें स्थान देती। इस लिए आप को और आम बनी इस्माईल को उनके हालात की कोई ख़ास जानकारी नहीं हो सकती थी। ऐसी सूरत में भी क़ुरआन ने उन नबियों के क़िस्से बयान किये और इस तरह बयान किये कि स्वयं तौरात को, जो उन्हीं नबियों के ग्रन्थों का योग है, इनमें से किसी के खंडन का साहस न हो सका और अगर उसने यह साहस किया भी, तो वह सफल न हो सका, बल्कि इसके ज़रिए उसने ख़ुद अपना ही खंडन कर लिया। इस का स्पष्टीकरण यह है कि तौरात के बयान क़ुरआनी बयानों से जहां कहीं भी अलग हैं, वहां पाई जाने वाली यह भिन्नता वास्तविक और असल तौरात की भिन्नता नहीं है, बल्कि यह उस घट-बढ़ के कारण है, जो अल्लाह की ओर से उतरने वाली तौरात में उसके मानने वालों के हाथों हो चुकी थी अतः जो व्यक्ति भी नबूवत के पद और स्थान को समझता है, इतिहास का ज्ञान रखता है और आलोचना के सिद्धांतों से काम लेकर इन बयानों को परख सकता है, वह साफ़ महसूस कर लेगा कि जहां कहीं भी क़ुरआन और तौरात के बयानों में भिन्नता है, वहाँ तौरात के बयान सच्चाई के मुताबिक़ हो ही नहीं सकते और यह कि सत्य पूरी तरह क़ुरआन ही के साथ दिखाई देता है।

क़ुरआन मजीद के लिए पिछले नबियों के हालात को इस तरह सही-सही बयान कर देना कि वर्तमान तौरात की ग़लतियों का सुधार भी हो जाये,इसके सिवा और कोई मतलब नहीं रखता कि उस के ये बयान 'सब कुछ जानने वाले' और 'सब की ख़बर रखने

वाले' ख़ुदा की ओर से हैं और क़ुरआन निश्चित रूप से आसमानी किताब है।

छठा सुबूत

क़ुरआन मजीद के किताबे इलाही होने का छठा सुबूत यह है कि इसमें बहुत से ऐसी ज्ञानपूर्ण बातें भी लिखी हैं, जो उसके उतरने के वक़्त तक पूरी दुनिया के लिए आम तौर से और अरब के लिये ख़ास तौर पर रहस्य के पर्दे में छिपी हुई थीं और विज्ञान व दर्शन के अच्छे जानकार भी उन रहस्यों को नहीं जानते थे। इसके बाद जब सदियां बीत गईं और ज्ञान-विज्ञान की खोजों ने अपने विकास के अनेकों चरण पूरे कर लिये, तब कहीं जाकर उन्हें जाना जा सका, जैसे :-

(क) सृष्टि-रचना के बारे में क़ुरआन ने कहा था :-

'बेशक ये सारे आसामान और यह ज़मीन पहले सब के सब आपस में मिले हुए थे, तो हमने उन्हें अलग-अलग किया।'

-सूर: अम्बिया : ३०

'सारे आसमानों और ज़मीन' से मतलब क़ुरआन की भाषा में पूरी सृष्टि हुआ करती है। आयत का खुला हुआ अर्थ यह है कि यह सृष्टि अपने वर्तमान रूप में आने से पहले, पूरी की पूरी, एक ही माद्दे (मूल तत्व) के रूप में थी, एक ही प्रकार की एक विशेष वस्तु थी, जो वातावरण में फैली हुई थी। फिर विधाता ने इसे अनेक भागों में बांट दिया और उनसे अनेक ग्रहों के रूप में जन्म लिया। यह मूल तत्व क्या और कैसा था ? इसका स्पष्टीकरण भी क़ुरआन ही की एक और आयत से यह होता है कि यह एक प्रकार का धुआं या गैस था।

(ख) समस्त प्राणियों के बारे में उसने बताया था कि इन सब का मूल पानी है। पानी ही वह चीज़ है, जिससे हर प्राणी की रचना हुई है :-

'हमने (अर्थात खुदा ने) हर जानदार को पानी से बनाया है।'

-सूर: अम्बिया: ३०

(ग) जानदार और बेजान सब के बारे में उसने एक बात यह कही कि :-

'हम ने हर चीज़ के जोड़े पैदा किये हैं।'

-ज़ारियात : ४९

यानी इस जगत में जो कुछ है, उसमें की हर चीज़ का, अल्लाह ने जोड़ा पैदा कर रखा है, ताकि एक दूसरे की पूर्ति करे और दोनों मिलकर, एक-दूसरे से सहयोग करके, उन नतीजों को ज़ाहिर करें, जो इस जगत की मसलहतों और ज़रूरतों के लिए ज़रूरी हैं। ऐसा न हो कि विभिन्न वस्तुओं की प्राकृतिक भिन्नताएँ उन्हें आपस में टकराती रहें और इसके फलस्वरूप यह जीवन-कारखाना शांतिपूर्ण निर्माण और विकास के बजाए अशाँति, खराबी और तबाही की भेंट चढ़ जाये।

(घ) चांद और सूर्य आदि की स्थाई दशा उसने यह बताई थी कि:-

'सूर्य अपने एक मुस्तक़र (ठिकाने) की ओर दौड़ रहा है, यह सर्वशक्तिमान और हर चीज़ की खबर रखने वाली सत्ता का ठहराया हुआ क़ानून है, और चांद के लिये हमने मंज़िलें मुकर्रर कर दी हैं और हरेक अपने विशेष क्षेत्र में बराबर तैरता रहता है।'

-यासीन : ३९, ४०

ये सारी बातें आज साबित हो चुकी हैं। वैज्ञानिक खोजें बता रही हैं कि सृष्टि अपनी आरम्भिक हालत में गैस के खज़ाने की शक्ल में थी, जीवन-स्रोत पानी है, रचनाओं के भीतर 'जोड़े' का नियम लागू है, चाँद और सूर्य और सारे ग्रह अपनी-अपनी

निश्चित धुरियों पर घूम रहे हैं-लेकिन जिस समय क़ुरआन मजीद इस विश्वास पूर्ण स्वर में, यह सब कुछ कह रहा था। उस समय के ज्ञान-विज्ञान के जानकारों को इन की कल्पना भी नहीं थी, इन्हें प्रमाणित तथ्य स्वीकार कर लेना तो दूर की बात थी। प्रश्न पैदा होता है कि फिर क़ुरआन में, सदियों पहले इन ज्ञानपूर्ण तथ्यों का उल्लेख कैसे आया ? और यह बात कैसे सम्भव हो सकी कि अरब के एक उम्मी (अपढ़) व्यक्ति के मुख से सृष्टि के इन महान तथ्यों का वर्णन हो जाए, जो केवल उसी समय नहीं, बल्कि उसके बाद भी एक लम्बे समय तक रहस्यमय बने रहे हों ? इसका एक ही उत्तर हो सकता है और वह यह कि जिस क़ुरआन ने इन तथ्यों को बताया, वह किसी इन्सान की ओर से नहीं था, बल्कि उस ख़ुदा की ओर से था, जो सारी कायनात का रचयिता है और जिसने स्वयं उन तथ्यों को इस कायनात के भीतर अस्तित्व प्रदान किया है।

सातवाँ सुबूत

इस वास्तविकता का सातवां सुबूत क़ुरआन मजीद की वह अनूठी रचना शैली है जो दिल की गहराइयों में जाकर असर करती हैं।

क़ुरआन यद्यपि एक ऐसा कलाम है, जो मानवीय शब्दों ही से बना है, और इसमें भी स्वाभाविक रूप से वही नियम काम कर रहे हैं, जो अरबी भाषा और साहित्य से सम्बन्ध रखते हैं, पर इसके बाद भी उसके शब्दों का गठन और उसकी वर्णन-शैली ऐसी है जो अरबी साहित्य के भंडार में कहीं भी नहीं पाई जाती। उसकी अपनी एक अजीब शान है, जो अपनी मिसाल आप है। इसकी सही स्थिति का अन्दाज़ा करने के लिए क़ुरआन और इस्लाम के किसी श्रद्धालु की नहीं, बल्कि उसके कट्टर विरोधियों की कुछ गवाहियां सुनिये :-

प्रसिद्ध क़ुरैशी नेता, वलीद इब्न मुग़ीरा हज़रत मुहम्मद सल्ल० के पास आया। आप ने औरों की तरह, उसे भी क़ुरआन पढ़ कर सुनाया। साफ़ महसूस हो रहा था कि कलामे इलाही के प्रभाव से उसके मन की कठोरता मात खा चुकी है, चुप-चाप घर वापस चला गया। यह ख़बर अबू जहल तक पहुंची तो घबराया हुआ उसके पास पहुंचा और कहा, 'चचा जान! मुहम्मद (सल्ल०) के बारे में (अपनी पोज़ीशन साफ़ कर दीजिये और) कुछ ऐसे शब्द कह दीजिए, जिन को सुनकर आपकी जाति वालों को इस बात का इत्मीनान हो जाए कि आप उस व्यक्ति की सच्चाई को नहीं मानते।' वलीद ने उत्तर दिया, 'आख़िर क्या कहूं ? ख़ुदा की क़सम! काव्य किसी भी प्रकार का हो (शेर, रज्ज़, क़सीदे या जिन्नी कवितायें), अरबी काव्य की एक-एक विधा को मैं तुम से ज़्यादा बेहतर जानता हूं। ख़ुदा की क़सम! यह व्यक्ति जो 'कलाम' पेश कर रहा है, वह इन विधाओं में से किसी से भी नहीं मिलता। 'ख़ुदा की क़सम! इस के कलाम में एक अनोखी मिठास और विशेष प्रकार का सौन्दर्य है, इसकी शाखायें फलों से लदी हुई हैं और इसकी जड़ें बड़ी उपजाऊ हैं, निश्चित रूप से वह हर काव्य से श्रेष्ठ है और कोई दूसरा काव्य इसे नीचा नहीं दिखा सकता। कोई सन्देह नहीं कि यह हर उस चीज़ को तोड़ कर रख देगा, जो उसके नीचे आ जाएगी।' -हाकिम व बैहक़ी

क़ुरैश का एक सरदार उत्बा इब्न रबीआ अल्लाह के रसूल सल्ल० की सेवा में आया और इस इरादे के साथ आया कि आप की दावत का जायज़ा ले और उससे आप को रोकने की कोशिश करे। आप ने उसे सूरः हाम्मीम सज्दा सुनानी शुरू की, जब आयत 'तो अगर वे मुख मोड़ें, तो कह दो, मैं तुम्हें (अज़ाब से) डराता हूं,' पर पहुंचे, तो उसने आप के मुंह पर अपना हाथ रख दिया और ख़ूनी

रिश्ते की दुहाई देते हुए निवेदन किया कि ख़ुदा के लिए! अब आगे न बढ़िये और फिर घर वापस चला आया। अबू जहल ने उसके पास जाकर इस मुलाक़ात और बात-चीत का हाल मालूम करना चाहा तो उसने सविस्तार बताते हुए कहा, 'ख़ुदा की क़सम! उसका पेश किया हुआ कलाम न तो जादू है, न कविता है, न कहानत है।'
-बैहक़ी

यह है भाषा शैली का चमत्कार कि सुनने वाले के दिल में बात उतर जाए और कलाम सुनाने का जो असल मक़सद हो वह सुनने वाले के दिल और दिमाग़ को संतुष्ट करता हुआ प्राप्त हो जाए। क़ुरआन की अभिव्यक्ति के इस चमत्कार को सामने रखकर देखा जाए तो पूरे मानव इतिहास में ऐसा कोई कलाम नहीं मिल सकता जो अपनी प्रभाव शक्ति में और दिलों और दिमाग़ों को जीत लेने में क़ुरआन की बराबरी कर सके। क़ुरआन की इस चमत्कारिक अभिव्यक्ति का, उसकी प्रभाव शक्ति का, उसके मन जीत लेने के गुण का हाल इन घटनाओं में देखिए :-

१. क़ुरैश के सरदारों ने इस्लामी पैग़ाम का मुक़ाबला करने के लिए लोगों को जो 'आदेश' दे रखे थे, उनमें से एक यह भी था कि :-

'इस क़ुरआन को न सुनो और इस (के सुनाये जाने के वक़्त शोर-हंगामा करके, इस) में गड़-बड़ डाल दिया करो। आशा है कि इस तरह तुम ग़ालिब रहोगे।' -हाम्मीम सज्दा : २५

मुश्रिकों का यह 'आदेश' स्पष्ट रूप से इस सत्य को स्वीकार करता था कि अगर लोग, ध्यान देकर इस क़ुरआन को सुनते रहे, तो वे अपने-आप को उसके सुपुर्द किये बिना न रह सकेंगे।

२. मक्का में ईमान लाने वालों पर जब काफ़िरों के ज़ुल्म सितम अपनी सीमा को पहुंच गए, तो हज़रत अबूबक्र रज़ि० ने भी एक बार हिजरत का इरादा कर लिया और घर से निकल खड़े हुये। रास्ते में इब्ने दग़न्ना नामक एक व्यक्ति मिला और आप को अपने संरक्षण का वचन दे कर मक्का वापस ले आया। जब यहां के लोगों को इस संरक्षण की सूचना मिली, तो उन्होंने इब्ने दग़न्ना से कहा, हम अबूबक्र को सिर्फ़ इस शक्ल में यहां रहने देंगे कि वे क़ुरआन ज़ोर से न पढ़ें और हमारी औरतों और बच्चों को सुनने का मौक़ा न दें। -इब्ने हिशाम, भाग १

३. अबूजहल और अख़्नस इब्न शुरैक़ से बढ़कर क़ुरआन से नफ़रत करने वाले और इस्लाम के विरोधी और कौन रहे होंगे, मगर अपनी नफ़रत और विरोध के बावजूद उनका हाल यह था कि एक बार क़ुरआन सुन लेने के बाद उस की असाधारण मिठास और उसकी मन मोहक भावाभिव्यक्ति को कभी भुला न सके। दिन भर विरोध का बाज़ार गर्म करते, मगर रातों को जब नबी सल्ल० की ज़ुबान से क़ुरआन सुन लेते तो बढ़ते हुए क़दम आप से आप रुक जाते और छिप-छिपा कर देर तक उसे सुनते रहते।
-इब्ने हिशाम, भाग १

४. हज़रत अब्दुल्लाह इब्न मसऊद का बयान है कि अल्लाह के रसूल सल्ल० ने एक बार ख़ाना-ए-काबा में सूरः नज्म पढ़ी। उपस्थित लोगों में ईमान और कुफ़्र वाले हर तरह के लोग मौजूद थे। जब आप सज्दा वाली आयात पर पहुंचे तो अल्लाह के हुक्म के मुताबिक़ सिर सज्दे में डाल दिया। आप को सज्दा करते देखकर (केवल एक व्यक्ति, अबू लहब को छोड़कर) सारे लोग सज्दे में गिर गये। (बुख़ारी) विचार कीजिये, मुसलमानों से तो शरीअत के हुक्म ने सज्दा कराया था, मगर यह कुफ़्र वालों के माथे क्यों झुक

गये? कोई शक नहीं कि यह कलामे इलाही की जादू भरी भावाभिव्यक्ति थी जिस की अभिव्यक्ति और जिस के रस में वे मग्न हो गए थे और उन्हें इसका कोई एहसास न रहा कि वे क्या करने जा रहे हैं ?

५. तुफ़ैल इब्न अम्र दौसी अपने क़बीले का सरदार और एक महान कवि था। एक दिन मक्का आया, तो क़ुरैश के कुछ लोग उस के पास पहुंचे और उसे ख़बरदार करते हुए बोले, देखिये, उस व्यक्ति मुहम्मद (सल्ल०) के पास हरगिज़ न जाइयेगा और न उसकी बातें सुनियेगा, क्योंकि उसके कलाम में 'जादू' का-सा प्रभाव है, उसे सुन कर मनुष्य अपने आप पर क़ाबू नहीं रख पाता। लेकिन तुफ़ैल ने उनका कहा न माना और उत्सुकता की स्वाभाविक मांग ने उसे आप की सेवा में पहुंचा दिया। आपने उसे क़ुरआन पढ़कर सुनाया तो वह बे-इख़्तियार बोल उठा, 'ख़ुदा की क़सम! इससे अच्छा कलाम मैंने कभी नहीं सुना' और यह कह कर अपने ईमान लाने का एलान कर दिया।

६. हज़रत उमर रज़ि० इस्लाम लाने से पहले हज़रत मुहम्मद सल्ल० के कट्टर दुशमनों में से थे। एक दिन ग़ुस्से में तलवार उठाकर इस इरादे के साथ निकले कि आज इस 'फ़ितने' को समाप्त ही कर दूंगा। मगर रास्ते ही में अपनी बहन के घर सूरः ताहा सुनने का संयोग पैदा हो गया। उसका सुनना था कि इस्लाम और पैग़म्बरे इस्लाम की दुश्मनी ईमान में बदल गई।

-इब्ने हिशाम, भाग १

७. जुबैर इब्न मुतइम रास्ते में चले जा रहे थे। हज़रत मुहम्मद सल्ल० मग़रिब की नमाज़ में सूरः तूर पढ़ रहे थे, ठहर कर सुनने लगे और सूरः के शब्द तीर बन कर दिल में उतरते गए। आख़िरकार वहीं इस्लाम स्वीकार कर लिया।

क़ुरआन की प्रभावपूर्ण भावाभिव्यक्ति का यह कमाल इस हाल में है कि वह कोई काव्य व साहित्य की पुस्तक नहीं, बल्कि नीति, उपदेश और आदेश व निर्देश की किताब है। सुन्दर शैली और मधुर व सरल भावाभिव्यक्ति के चमत्कारों का प्रमुख क्षेत्र काव्य व साहित्य ही है। यही कारण है कि विश्व-इतिहास में जिन लोगों ने अपने कला-कौशल का सिक्का जमाना चाहा है, उन्होंने साहित्यिक लेखों और रसयुक्त काव्यों द्वारा ही इसे सम्भव बनाया है। ऐसा कोई उदाहरण सामने नहीं लाया जा सकता कि किसी ने नीति व धर्म सरीखे शुष्क विषयों पर बोलते या लिखते हुए भावाभिव्यक्ति का कोई अनोखा आदर्श प्रस्तुत किया हो। फिर साहित्यिक लेखों और रसयुक्त काव्यों का भी हाल यह है कि किसी ऊँची से ऊँची रचना में भी शुरू से लेकर आख़िर तक अभिव्यंजना-शक्ति समान स्तर की बाक़ी नहीं रहती, उसके कुछ अंश श्रेष्ठतम होंगे, तो बहुत से भाग निचले स्तर के भी होंगे, मगर क़ुरआन का हाल बिल्कुल भिन्न है। वह धर्म-शिक्षाओं और शरई हुक्मों की किताब होते हुए भी अनुपम अभिव्यंजना की पोषक है और यह अलंकृत शैली पूरी किताब का गुण है। मानव-बुद्धि को मानना पड़ेगा कि यह रूप अस्तित्व में नहीं आ सकता था, अगर क़ुरआन 'इन्सानी कलाम' होता। इसलिए यह न हज़रत मुहम्मद सल्ल० का कलाम है, न किसी और व्यक्ति का, यह निश्चित रूप से उस ख़ुदा का कलाम है जो सारी अभिव्यंजनाओं की तरह स्वयं अभिव्यंजना-शक्ति का भी रचयिता है।

आठवाँ सुबूत

क़ुरआन के कलामे इलाही होने का आठवां सुबूत उसकी शिक्षाएं हैं। क्योंकि इन शिक्षाओं का अध्ययन कीजिए तो मालूम

होगा कि एक ओर तो उनमें उच्च-स्तर का संतुलन और स्वाभाविक तार्किकता पाई जाती है, दूसरी ओर उनमें इन्सान के लिए मुकम्मल हिदायत है, उनमें अध्यात्म के आवश्यक तथ्य और धर्म के उसूलों और अक़ीदों की तफ़सील भी है और मानव-चरित्र व आचरण की व्याख्या भी, वास्तविक उपास्य की उपासना के बारे में व्यापक निर्देश भी हैं और उसके अधिकारों के बारे में विस्तृत विवेचन भी, व्यक्ति के लिए प्रशिक्षण रीतियां भी हैं और समाज निर्माण के सिद्धान्त भी, पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक आदेश भी हैं और सन्धि व युद्ध के नियम और क़ानून भी, इन शिक्षाओं में से जहां तक सामूहिक हुक्मों का ताल्लुक़ है, उसका रूप संसार की सारी व्यवस्थाओं से अलग है और वे हर राष्ट्र, हर समय और हर देश के लिए समान रूप से उचित हैं, सदियों तक उचित साबित हो चुके हैं और आगे भी, जब कभी उन्हें अपनाया जायेगा, उचित ही साबित होंगे। फिर ये शिक्षाएं अपने औचित्य और अपनी सत्यता पर और अपने अमली नतीजों की ख़ूबी पर मज़बूत दलीलें और बोलती गवाहियां रखती हैं। इनकी बुनियाद पर मानव-जीवन का जब भी निर्माण किया गया, उसे प्रसन्नता ही प्रसन्नता मिली—सोचिये, क्या ये अनूठी शिक्षाएं हज़रत मुहम्मद सल्ल० के अपने दिमाग़ की उपज थीं। ऐसा सोचते समय दो खुली हक़ीक़तों को अवश्य ही सामने रखिये—

एक तो यह कि ये पारभौतिक, नैतिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक विषय व वार्त्ताएं, जिनके सिलसिले में क़ुरआन मजीद ने, इतनी सफलता से चर्चा की है, साधारण स्तर के विषय व वार्त्ताएं नहीं हैं, बल्कि ऐसे ऊँचे विषय हैं, जिनके सिलसिले में बात करने का अधिकार और ज्ञान व विवेक का पद प्राप्त करने के लिये

उमरें खपा दी जाती हैं, तब कहीं जाकर इक्का-दुक्का व्यक्तियों को यह अधिकार और पद प्राप्त हो जाता है।

दूसरी यह कि जिस व्यक्ति ने क़ुरआन को पेश किया था, उसकी ज़िन्दगी के हालात ये हैं कि वह अरब जैसे पिछड़े देश में पैदा हुआ था, उसका बचपन यतीमी में गुज़रा था, नवजवानी बकरियां चराने में और जवानी व्यापार और कारोबार करने में बीती थी। वह उम्मी (अपढ़) था। उसे पढ़ने—लिखने की हवा भी न लगी थी। वह शिक्षा दीक्षा और कला को जानता न था। उसे मक्का के लोग एक सज्जन, सुशील, शान्तिप्रिय, नेक और शरीफ़ शहरी की हैसियत से तो ज़रूर जानते थे, मगर चालीस साल की उम्र तक किसी ने उसको ज्ञान और विवेक की बातें करते न सुना था, किसी ने उसे अध्यात्म और नैतिकता पर, जीवन की सामूहिक समस्याओं पर, क़ानून और राजनीति पर एक दिन भी बात करते न पाया था। किसी ने उसे अल्लाह के वजूद, तौहीद, वह्य व रिसालत, आख़िरत और बदले के दिन, जन्नत—दोज़ख़, आसमानी किताबों और पिछली नबूवतों पर कभी एक शब्द कहते न सुना था। लेकिन अपनी चालीस वर्षीय ज़िन्दगी की इस सादा और सपाट पृष्ठभूमि के बाद उसने यकायकी संसार को वह कलाम सुनाना शुरू कर दिया, जो इन अनुपम शिक्षाओं पर आधारित था। कोई सन्देह नहीं कि इन दोनों हक़ीक़तों को, जिनका दोपहर के सूरज की तरह इन्कार नहीं किया जा सकता, सामने रख कर विचार करने वाला कोई भी व्यक्ति कभी यह सोच भी नहीं सकता कि ये शिक्षायें हज़रत मुहम्मद सल्ल० के अपने मस्तिष्क की उपज थीं। इसके विपरीत उसका फ़ैसला केवल यह होगा कि ये शिक्षायें केवल अल्लाह की वही का नतीजा थीं, जैसा कि उसके पेश करने वाले ने बार-बार ज़ोर देकर और साफ़ लफ़्ज़ों में फ़र्माया है।

नवां सुबूत

इस दावे का नवां सुबूत वे नतीजे हैं, जो क़ुरआन के पालन से दुनिया के सामने आये। हज़रत मसीह अलै० ने सच्चे नबियों की यह पहचान बताई है कि, 'तुम उन्हें उनके फलों से पहचानोगे।' यही बात ख़ुद क़ुरआन ने भी एक और ढंग से इस तरह फ़र्माई है कि, 'कलमा-ए-तैयबा (यानी क़ुरआनी दावत) का उदाहरण एक अच्छी नस्ल के पेड़ का है, जिसकी जड़ें ज़मीन में गहरी जमी हुई हों और शाखायें आसमान तक फैली हुई हों और वह हर वक़्त अपने पालनहार के हुक्म से (बेहतरीन) फल देता रहता हो।' (सूरः इब्राहीम २४-२५) इस तरह किसी ग्रन्थ के किताबे इलाही होने की सबसे खुली निशानी यह है कि वह आचार-विचार, हर हैसियत से मनुष्य को कितना सच्चा, कितना नेक और कितना कामियाब बनाता है। अगर किसी नबी और किताब की सच्चाई मालूम करने के लिए यह एक सही और कामियाब कसौटी है— और कोई सन्देह नहीं कि बात यों ही है— तो मान लेना चाहिये कि हज़रत मुहम्मद सल्ल० का नबी और क़ुरआन का किताबे इलाही होना एक अटल सत्य है, क्योंकि धर्मों के इतिहास में कोई और किताब नहीं, जो इस कसौटी पर क़ुरआन से ज़्यादा कामियाब साबित हुई हो। इस किताब के ज़रिए जो क्रान्ति हुई, उससे अधिक बड़ी, अधिक पूर्ण और अधिक शान्तिपूर्ण क्रान्ति का कोई उदाहरण नहीं मिल सकता। बारह लाख वर्ग मील के विशाल क्षेत्र में फैले हुए लड़ाकू सरकश, जाहिल और एक-दूसरे के दुश्मन अरबों को इस किताब ने दुनिया में सबसे अधिक मानवता-प्रिय, संगठित, नम्र और भलाई पसन्द करने वाला 'समुदाय' बना दिया। उसकी शिक्षाओं ने ऐसे व्यक्ति तैयार किए जिनका वजूद मानवता की ऊंचाइयों को छू रहा था, ऐसा समाज बनाया, जो साक्षात

न्याय और इन्साफ़ था, ऐसा राज्य स्थापित किया, जो इस धरती पर सही अर्थों में आसमानी बादशाहत थी। क़ुरआन के पैदा किए हुए इन 'फलों' को देख कर कौन कह सकता है कि उसने अपने बारे में जो दावा किया था, वह ग़लत और झूठा था? बुराई की बेल से भलाई का और झूठ की शाखा से सच्चाई का फूल आज तक कभी नहीं खिला है। फिर यह कैसे सम्भव है कि जिस किताब और दावत (आह्वान) की बुनियाद ही झूठ और धोखे पर हो, उससे संसार में सच्चाई और ईमानदारी की बहारें आ गई हों।

दसवां सुबूत

इसका दसवां सुबूत वह बेबसी और पूर्ण मौन है जो क़ुरआन की चुनौती के उत्तर में अपनाया गया। क़ुरआन के इन्कारियों ने जब हर दलील की ओर से अपने कान बन्द कर लिए और उसे अल्लाह की किताब न मानने पर वे बराबर अड़े रहे, तो उसने अपने उतारने वाले की ओर से उन्हें चैलेंज किया कि :—

'अगर तुम्हें इस किताब के बारे में, जिसे हमने अपने बन्दे (मुहम्मद सल्ल०) पर उतारा है, (हमारी ओर से होने में) कोई शक हो तो इस जैसी कोई एक ही सूरः बना लाओ और इस उद्देश्य के लिए अल्लाह को छोड़ कर अपने सारे प्रतिनिधियों को भी बुला लो, अगर तुम अपने विचार में सच्चे हो।'

-सूरः बक़रः २३

यानी अगर तुम अपने इस विचार को सही समझते हो कि यह क़ुरआन अल्लाह का कलाम नहीं, बल्कि एक इन्सान का कलाम है, तो यह बहस तुम्हारे हक़ में अभी ख़त्म हो सकती है और वह इस तरह कि तुम भी ऐसे गुणों वाली एक किताब, जैसा कि यह क़ुरआन है, लिख लाओ, बल्कि इसकी जैसी एक सूरत ही बना

कर पेश कर दो। फिर इस सिलसिले में तुम पर यह भी कोई पाबन्दी नहीं कि तुममें से कोई एक ही व्यक्ति यह कार्य कर दिखाए। तुम्हें इस मामले में पूरी आज़ादी दी जाती है, तुम सब मिल कर और जिस किसी को भी अपनी मदद के लिए बुलाना चाहो, बुला कर कोशिश कर डालो, यहां तक कि पूरी मानव-जाति को इस काम के लिए इकट्ठा कर लेने की तुम्हें पूरी छूट है। अगर तुमने इस तरह के इस चैलेंज का सफल उत्तर दे दिया, तो क़ुरआन का इन्सानी कलाम होना मान लिया जाएगा और फिर वह अपने को 'कलामे इलाही' कहना छोड़ देगा। स्पष्ट है कि अगर अकेला एक व्यक्ति (हज़रत मुहम्मद सल्ल०) यह क़ुरआन लिख सकता है—जो उम्मी (अपढ़) भी है और जिसकी तक़रीर और शायरी की आज तक कोई चर्चा भी नहीं सुनी जा सकी है—तो तुम्हारे पूरे गिरोह के लिए, जिसमें बड़े—बड़े कवि और वक्ता मौजूद हैं, इसका उत्तर तैयार कर पेश कर देना कुछ कठिन न होगा। तुम बड़ी आसानी से इस चुनौती को स्वीकार करके इस व्यक्ति का मुंह बन्द कर सकते हो—यह चुनौती उन अरबों को दी गई थी जिनको अपनी भावाभिव्यक्ति और भाषा—सौन्दर्य पर गर्व था और जो तक़रीर की—कला के 'अहं' में उचित ही शेष सारे जगत को 'अजम' (गूंगा) कहा करते थे, मगर पूरा अरब इस चुनौती को सुन कर खुद गूंगा बन गया। यह बताने की ज़रूरत नहीं कि इन लोगों के भीतर क़ुरआन मजीद को इन्सानी कलाम साबित कर देने की कितनी प्रबल इच्छा पाई जाती थी। यह सम्भव भी न था कि अपनी इस इच्छा के पूरा कर लेने का कोई उपाय उन के बस में होता और वे उसे अपनाने में एक पल की भी देर लगाते। उन्होंने क़ुरआन को किताबे इलाही न मान कर कौन—सा नुक़सान न किया था, जिसे ठंडे पेटों बरदाश्त कर लेते?

सरदारी उनकी छिनी, क़ैद व बन्द की रुसवाई उन्हें सहनी पड़ी, ख़ाना-ए-काबा से अपने पुराने उपास्यों के देश-निकाला पाने और धराशायी होने का दिन उन्हें देखना पड़ा, ख़ाक और ख़ून में वे नहाए, मगर इन सबसे बचने के लिए जो एक 'आसान' सी तदबीर उनके सामने रख दी गई थी उसे उन्होंने कभी न इस्तेमाल किया, हालांकि इसके लिए उन्हें बार-बार ध्यान दिलाया गया। मक्का में भी कई बार उनके सामने चैलेंज रखा गया और फिर मदीना में भी उसे दुहराया गया, मगर उन्होंने कभी उसे स्वीकार न किया। क्या अक़्ल में यह बात समा सकती है कि स्वीकार कर लेने की शक्ति रखने के बावजूद उन्होंने स्वयं ही ऐसा नहीं किया?

यह चुनौती आज भी अपनी जगह इसी तरह मौजूद है। संसार की दूसरी किताबों की तरह क़ुरआन मजीद की भाषा मुर्दा भी नहीं हो चुकी है, बल्कि अपनी पुरानी और नई हर तरह की 'पूंजी' के साथ ज़िंदा है और उसके बोलने और जानने वालों में बड़े-बड़े प्रसिद्ध साहित्यकार और विद्वान मौजूद हैं, जिनमें इस्लाम के कट्टर विरोधियों की भी कोई कमी नहीं। चाहें तो, इस चैलेंज को स्वीकार कर लें। मगर चौदह सौ वर्षों का मौन आज भी टूटता दिखाई नहीं पड़ता, क्यों?

याद रहे कि दुनिया के कोने-कोने में मुसलमानों के फैल जाने और उनके साथ क़ुरआन मजीद की लाखों-करोड़ों प्रतियों के पहुंच जाने के कारण यह हिजरी की पहली शताब्दी ही से पूरी तरह प्रसारित हो चुका है। अगर इस की चुनौती को कभी भी और कहीं भी स्वीकार किया जा सका होता, तो यह एक ऐसी घटना होती, जो स्वाभाविक रूप से जग-प्रसिद्ध हो गई होती। इसलिए भी कि इस्लाम और क़ुरआन के विरोधियों के लिए यह 'खुली विजय' एक बहुत बड़ी नेमत होती। वे इसकी ख़बर को, बल्कि क़ुरआनी

'चुनौती' के इस जवाब को, उसे महत्वहीन बनाने के लिए, पूरे जोश और लगन के साथ हर ओर फैला देते और इसके नतीजे में, न केवल यह कि ग़ैर-मुस्लिम जगत क़ुरआन से अपने इन्कार पर अथाह दलील पा लेता, बल्कि यह घटना स्वयं मुसलमानों के लिए इस्लाम से फिर जाने का कारण बन जाती, लेकिन इस वास्तविकता को मुस्लिम और ग़ैर-मुस्लिम, सभी स्वीकार करते हैं कि इतिहास इस प्रकार की किसी भी घटना के उल्लेख से बिल्कुल ख़ाली है।

ग्यारहवां सुबूत

क़ुरआन के किताबे इलाही होने का एक और सुबूत उसके 'आंखों देखे गवाह', इस क़ुरआन के पेश करने वाले, हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की गवाही है। आपने इसे अपनी ओर से नहीं, बल्कि अल्लाह की ओर से पेश किया है, यानी आपका कहना है और बार-बार का कहना है कि यह कलाम जो मैं पेश कर रहा हूं, मुझ पर संसारों के पालनहार की ओर से उतरा है, वह अपने बुज़ुर्ग फ़रिश्ते (जिबरीले अमीन) को मेरे पास भेजता है और वह मुझे यह कलाम सुनाया करता है—पूछा जाएगा कि आख़िर क्या ज़रूरी है कि आपकी इस बात और आपकी इस गवाही को सच ही समझा जाए? इसका उत्तर यह है कि आपका व्यक्तित्व वह व्यक्तित्व है, जिसकी सत्य-प्रियता सदैव ही किसी सन्देह से परे रही है, सिर्फ़ अपनों के ही नज़दीक नहीं, बल्कि दूसरों के नज़दीक भी। दुनिया जानती है कि आपके विरोध में अरब के लोगों ने वह सब कर और कह डाला, जो उनके बस में था, मगर उन्होंने इससे कभी इन्कार नहीं किया कि आप एक सच्चे और अमानतदार इन्सान हैं। नबूवत से पहले मक्का वालों ने, उनके आम और ख़ास दोनों ने, आपको 'सादिक़' (सच्चा) और 'अमीन' (अमानतदार) की

उपाधि दे रखी थी। नबूवत के एलान के बाद यद्यपि उन्होंने ख़ास इस दावे की हद तक आपकी पुष्टि नहीं की और आपके बार-बार कहने के बावजूद कुरआन को कलामे इलाही नहीं माना, मगर जहां तक इस ख़ास मामले के सिवा दूसरे मामलों का सम्बन्ध था, वे आपकी सच्चाई और अमानतदारी को अब भी पूरी तरह स्वीकार करते थे। अबू सुफ़ियान जैसे जानी दुश्मन से जब क़ैसर ने अपने दरबार में पूछा कि, 'क्या नबूवत का दावा करने से पहले उस व्यक्ति पर तुम लोगों ने कभी झूठ बोलने का आरोप लगाया था?' तो उन्होंने अपनी सख़्त दुशमनी के बावजूद 'हां' कहने की कोई गुंजाइश नहीं पाई? उसने फिर पूछा कि, 'क्या यह व्यक्ति वादाख़िलाफ़ी कर जाता है?' तो उन्हें फिर कहना पड़ा कि, 'नहीं, अभी तक तो उसने ऐसा कभी नहीं किया। हां इस समय हमारे और उसके बीच एक समझौता (हुदैबिया का समझौता) चल रहा है, नहीं कहा जा सकता कि इसके बारे में उसका रवैया क्या रहेगा?' (बुख़ारी) इसी प्रकार इस्लाम-विरोधियों के सरदार, अबू जहल ने एक बार हज़रत मुहम्मद सल्ल० से बातें करते समय स्वयं कहा कि, 'हम आपको झूठा नहीं कहते, लेकिन जो बातें आप पेश कर रहे हैं, हम उन्हें झूठ ही समझते हैं।' बद्र की लड़ाई के समय उसके एक साथी अख़्नस इब्न शुरैक़ ने अकेले में उससे पूछा, 'ठीक-ठीक बताओ, तुम मुहम्मद (सल्ल०) को सच्चा समझते हो या झूठा?' उसने उत्तर दिया, 'ख़ुदा की क़सम! मुहम्मद (सल्ल०) एक सच्चा आदमी है, उम्र भर कभी झूठ नहीं बोला है।' इन बातों को सामने रखिए, फिर फ़ैसला कीजिए कि क़ुरआन के किताबे इलाही होने की जो गवाही आपने दी है, उसे सच्चा मानना ज़रूरी है या नहीं? अर्थात क्या यह व्यावहारिक रूप से सम्भव है कि जो व्यक्ति जन्म से ही सच्चा और ईमानदार रहा

हो और जिसने किसी व्यक्ति के किसी मामले में कभी झूठ न बोला हो, वह अपने खुदा के नाम पर ऐसे धड़ल्ले से झूठ बोल देगा उस खुदा के नाम पर, जो सब कुछ जानता रहता और सुनता रहता है, जिसके सामर्थ्य से कोई चीज़ भी बाहर नहीं हो सकती और जो दोनों संसारों का एकमात्र शासक है? फिर झूठ भी ऐसा, जो एक–दो बार नहीं, बल्कि लगातार तेईस वर्ष बोला गया हो, अपने किसी शत्रु पर भी कभी आरोप न धरने वाला अपने पालनहार पर सदैव आरोपण करता रहा, इन्सानी मामलों में झूठ न बोलने वाला, खुदा के मामले में एक बार भी सच न बोल पाया? क्या मनोविज्ञान का अध्ययन, तजुर्बों की गवाही, और अक़्ल, कोई चीज़ भी इस अनोखी बात की ताईद कर सकती है? नहीं और बिल्कुल नहीं। इसलिए सच तो यह है कि हज़रत मुहम्मद सल्ल० की गवाही, क़ुरआन के किताबे इलाही होने का एक ऐसा सुबूत है जिसके बाद किसी भी सूझ-बूझ वाले व्यक्ति के लिए किसी और सुबूत की कोई ज़रूरत नहीं रह जाती।

क़ुरआन मजीद के 'कलामे इलाही' होने पर भारी संख्या में दलीलें आपके सामने आ चुकीं। इन दलीलों का जायज़ा लीजिए तो मालूम होगा कि किसी ग्रन्थ के आसमानी किताब होने पर जो स्वाभाविक दलीलें हो सकती हैं,इन दलीलों में वे सब की सब मौजूद हैं। इनमें नियमित दावे की मौजूदगी का ज़रूरी सुबूत भी है, आन्तरिक गुणों की दलीलें भी हैं, परिणामों और फलों की गवाहियां भी हैं, फिर स्वीकारात्मक दलीलें भी हैं और निषेधात्मक दलीलें भी हैं। इन दलीलों को देख कर न्याय और सत्य-प्रियता का निर्णय जो कुछ भी हो सकता है, वह किसी स्पष्टीकरण का मुहताज नहीं। निश्चित रूप से यह निर्णय इसके सिवा और कुछ नहीं हो सकता कि क़ुरआन भी उसी कृपा का एक खुला रूप है जो

मनुष्य के पैदा करने वाले और पालने वाले की ओर से निरन्तर हो रही है और इसके 'कलामे इलाही' होने में तनिक भी सन्देह नहीं किया जा सकता।

क़ुरआन और दूसरी आसमानी किताबों का सम्बन्ध

अल्लाह की हिदायत के बारे में वैसे तो बुद्धि का निर्णय ही बता देता है कि वह मनुष्य की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता है और उसका आना और मिलना बिल्कुल अनिवार्य है। ऐसे ही, इतिहास इस बात की निरन्तर गवाही दे चुका है कि वह आई भी। लेकिन अब इस महत्वपूर्ण समस्या के बारे में ऐसे बहुत से बुनियादी सवाल उठते हैं, जिनका जवाब मिलना बहुत ज़रूरी है, जैसे यह कि यह सिलसिला किस तरह जारी रहा? और इसके लगातार जारी रहने की ज़रूरत क्यों पेश आई, वह सदैव एक ही-सी रहती रही है या उसका रूप बदलता रहा है? अगर एक ही-सी रहती रही है तो बुनियादी तौर पर वह क्या थी? और अगर उसका रूप बदलता रहा है तो अब तक क्या-क्या हिदायतें आ चुकी हैं? स्पष्ट है कि इन प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर किसी और ज़रिए से नहीं मिल सकता। अगर मिल सकता है तो केवल अल्लाह ही की ओर से मिल सकता है, जिसका व्यावहारिक तरीक़ा यह है कि उसकी उतारी हुई किताबों की ओर ध्यान मोड़ा जाए। इस के लिए जब हम क़ुरआन मजीद का अध्ययन करते हैं, जिसके किताबे इलाही होने पर हम हर तरह की दलीलें दे चुके हैं, तो वह हमें इन तमाम बातों को सविस्तार बता देता है, जिसका सार यह है :–

दुनिया में अल्लाह की हिदायत उसी समय आनी शुरू हो गई थी, जिस समय यहां पहले इन्सान ने क़दम रखा था। यह हिदायत

बुनियादी तौर पर यह थी कि उस पूरी कायनात के मालिक ने तुम इन्सानों को इस संसार में अपना 'ख़लीफ़ा' और 'नायब' बना कर पैदा किया है, जिसके लिए तुम्हें एक हद तक इरादे और इख़्तियार की आज़ादी भी दे दी गई है, इसलिए तुम अपने धर्म में और इस दुनिया के बरतने में आज़ाद हो, तुम जो रवैया चाहो, अपना सकते हो, लेकिन तुम्हें याद रखना चाहिए कि तुम्हारा वही रवैया सही होगा, जो अपने रचयिता और अपने मालिक की हैसियत से सही मानने और उसके अधिकारों के सही स्वीकार करने पर आधारित हो।

उसकी हैसियत का सही मानना यह है कि अपने को न तो बिल्कुल स्वतन्त्र व स्वच्छन्द समझो, न अल्लाह के सिवा किसी और का बन्दा (दास, गुलाम) ख़्याल करो, बल्कि एक ओर तो अपने को सिर्फ़ बन्दा जानो, दूसरी ओर अल्लाह ही को अपना उपास्य और शासक व स्वामी जानो और उसके अलावा किसी और को अपने आज्ञापालन, अपनी भक्ति और अपनी वन्दना का अधिकारी न समझो।

उसके अधिकारों का स्वीकार करना यह है कि तुम अपने आप को उसकी इच्छा और प्रसन्नता के हवाले कर दो। वह तुम्हें जीवन बिताने के लिए जो हुक्म दे, अपना जीवन ठीक उसी के अनुसार बिताओ। यह दुनिया, वास्तव में, एक परीक्षा स्थली है, जहां तुम इख़्तियार की आज़ादी देकर पैदा ही इसलिए किए गए हो कि देखा जाए, तुम अपने इख़्तियार को खुद उसकी भक्ति व आज्ञापालन का कर्त्तव्य निभाने में इस्तेमाल करते हो या नहीं? इसीलिए एक दिन तुम्हें अपना यह जीवन समाप्त करके एक दूसरे लोक में प्रवेश करना होगा, जहां वह तुम्हारे सांसारिक जीवन की रीति-नीति और सारे कर्मों को देख कर फ़ैसला करेगा कि तुम में से

कौन इस आज़माइश में कामियाब रहा है और कौन ना-कामियाब? जिस व्यक्ति ने यहां जीवन का सही रवैया अपनाया होगा, उसे वहां भी शान्ति और सुख प्राप्त होगा और वहां स्थाई रूप से राहत और ख़ुशी का घर मिलेगा। जिसका नाम 'जन्नत' है। और जो इस रवैए को अपनाने में नाकाम रहेगा, उसका यह जीवन भी बेचैनी और परेशानी में बीतेगा और वहां पहुंचने पर उसे स्थाई दुख और तकलीफ़ के भयानक गढ़े में फेंक दिया जाएगा, जिसका नाम जहन्नम है।

इस 'हिदायत' के साथ मनुष्य ने अपने जीवन को आरम्भ किया, लेकिन जब एक लम्बी मुद्दत बीत गई तो इस हिदायत से बे-परवाह कर देने वाले तत्वों ने ज़ोर दिखाया, और फिर एक समय ऐसा आ गया, जब लोग उसे बिल्कुल ही भुला बैठे और सही रवैया छोड़ कर ग़लत राहों पर चल खड़े हुए। अल्लाह की रहमत फिर पलटी और हिदायत का यह बुझाया हुआ दीप उसने फिर जला दिया, ताकि आने वाले नस्लें अंधेरे में रह कर ग़लत रास्तों ही में भटकने के लिए मजबूर न हों। आगे चल कर आदम की औलाद धरती के कोने-कोने में फैल गई, इसलिए अल्लाह ने आवश्यकतानुसार हर क्षेत्र के लोगों के लिए अलग-अलग 'हिदायतनामे' भेजे। लेकिन हर हिदायतनामे के साथ अन्ततः वही सुलूक होता रहा, जो पहले हो चुका था। उससे उदासीनता बरती गई, उसे भुला दिया गया, उसमें घट-बढ़ करके उसे अपनी इच्छानुसार ढाल लिया गया, इसलिए ज़रूरत पेश आई और बराबर आती रही कि अल्लाह अपने महरूम बन्दों के लिए हिदायत भेजे—यह सिलसिला चलता रहा, यहां तक कि क़ुरआन नामी 'हिदायतनामा' आया, जो इस दया-क्रम की अन्तिम कड़ी था। बुनियादी तौर पर अल्लाह के भेजे हुए सारे हिदायतनामे

बिल्कुल एक थे, उनमें अगर कोई अन्तर था तो विवरण और व्याख्या में या छोटे मोटे निर्देशों में। उद्देश्यों और सिद्धान्तों की दृष्टि से तो निश्चित रूप से एक ही फ़र्मान, एक ही पैग़ाम था जो सच्चे स्वामी की ओर से सदैव अपने बन्दों के पास आता रहा।

अल्लाह की हिदायत की समस्या के बारे में इन सविस्तार व्याख्याओं के सामने आ जाने के बाद एक बड़ी अहम सच्चाई रोशनी में आ जाती है और वह यह कि दुनिया में अल्लाह के जितने हिदायतनामे आए हैं, उनमें से कोई भी किसी का प्रतिद्वन्द्वी न था और चूंकि क़ुरआन मजीद भी उन्हीं में से एक है, इसलिए उसका भी रूप और उसकी भी हैसियत कोई दूसरी नहीं हो सकती। निश्चित रूप से वह भी दूसरी आसमानी किताबों का सहयोगी है, उनका प्रतिद्वन्द्वी नहीं, क्योंकि उसके उतरने का उद्देश्य ठीक वही है, जो दूसरी किताबों का था और उसकी शिक्षाओं की बुनियादी और उसूली बातें भी वही हैं, जो दूसरी हिदायतनामों की रही हैं। इसलिए उनसे उनका सम्बन्ध विरोध और मुक़ाबले का नहीं, बल्कि एकता का है। उसने इस बात को विस्तार से बयान भी कर दिया है, जैसे वह लोगों को समझाते हुए कहता है कि :–

'अल्लाह ने तुम्हारे लिए वही दीन (धर्म) मुक़र्रर फ़र्माया है, जिसकी उसने नूह को हिदायत दी थी और जिसकी (हे मुहम्मद!) हमने तुम पर वह्य की है और जिसकी हमने इब्राहीम को, मूसा को और ईसा को वसीयत की थी, यह कि इस दीन को क़ायम करो और इसके भीतर विभेद न पैदा करो'। —शूरा : १५

फिर यही नहीं कि क़ुरआन मजीद ने केवल अपने सामान्य सम्बोधित जनों ही को इस बड़ी सच्चाई से अवगत कराया है,

बल्कि स्वयं अपने लाने वाले पैग़म्बर तक को भी उसने ऐसा ही बोध करा रखा था। चुनांचे बहुत से नबियों का उल्लेख करने के बाद फ़र्माया गया था कि :–

'ये वे लोग हैं जिनको अल्लाह ने हिदायत दी थी, तो (हे मुहम्मद!) तुम (भी) उन्हीं की हिदायत की पैरवी करो।'

—अनआम : ९

यानी यह एक खुली हक़ीक़त है कि क़ुरआन मजीद ने अपनी असल हिदायत को पिछली हिदायतों और किताबों ही का एक नया संस्करण कहा है और फ़र्माया है कि मुझमें और इनमें हरगिज़ कोई अलगाव और भिन्नता नहीं। यह बिल्कुल दूसरी बात है कि आज जिन किताबों के आसमानी होने का दावा किया जाता है, उनमें पाई जाने वाली बुनियादी हिदायतें, क़ुरआनी शिक्षाओं से बहुत कुछ भिन्न हैं। इस स्थिति का यह अर्थ बिल्कुल नहीं है कि ये किताबें वास्तव में आसमानी भी हैं और साथ ही यही उनकी मूल शिक्षा भी थी, बल्कि यह है कि या तो ये किताबें आसमानी नहीं, या फिर इनकी मूल शिक्षा इनके अनुयायियों की कोताही, नाक़दरी और घट-बढ़ की भेंट चढ़ चुकी है। वरना यह सम्भव नहीं कि अल्लाह की ओर से कभी भी कोई ऐसा हिदायतनामा आया हो, जिसकी बुनियादी शिक्षायें क़ुरआनी शिक्षाओं से मेल न खाती हों।

क़ुरआन की कुछ प्रमुख विशेषताएं

लेकिन, इस तथ्य के होते हुए भी, कि क़ुरआन दूसरी आसमानी किताबों का प्रतिद्वन्द्वी नहीं, बल्कि 'सहयोगी' है और इसकी बुनियादी शिक्षाएं वही हैं, जो उनकी थीं, वह उनके मुक़ाबले में कुछ भिन्न प्रमुख विशेषताएं भी रखता है। इन

विशेषताओं का दावा या उल्लेख या एलान स्वयं उसने और उसके लाने वाले पैग़म्बर ने किया है और वह इस प्रकार है :–

१. क़ुरआन किसी ख़ास जाति या क्षेत्र के लिए नहीं, बल्कि पूरी दुनिया के लिए उतरा है, उसका सम्बोधन पूरी मानव-जाति से है। वह कहता है :–

'बड़ी बरकतों वाला है वह (अल्लाह) जिसने यह सत्य-असत्य को पूरी तरह स्पष्ट कर देने वाला (क़ुरआन) अपने बन्दों पर उतारा है, ताकि वह सारी दुनिया को ख़बरदार करे।'

—फ़ुर्क़ान : १

इसी तरह उसने बार-बार फ़र्माया है कि, "अल्लाह ने मेरे लाने वाले पैग़म्बर (सल्ल०) को सारे इन्सानों का पैग़म्बर बना कर भेजा है।" (सूरः सबा, आयत २८ और सूरः आराफ़ आयत १५८) उसके इन कथनों का सही मतलब यह है कि वह सारे इन्सानों के लिए उतारा गया है।

यह पद इससे पहले की किसी किताब को प्राप्त न था, जैसा कि नबी सल्ल० ने स्पष्ट कर दिया है कि, "मुझसे पहले का हर नबी विशेष रूप से अपनी ही जाति के लिए नबी बना कर भेजा गया था।" दूसरे शब्दों में यह कि क़ुरआन से पहले की हर आसमानी किताब केवल किसी विशेष जाति के लिए उतारी गई थी।

२. क़ुरआन हर पहलू से एक मुकम्मल 'हिदायतनामा' है।' वह एक ऐसा 'दीन' है, एक ऐसी शरीअत है, एक ऐसी आचार-विचार-व्यवस्था है, जिसमें मनुष्य के विश्वास और व्यवहार, बाहरी और आन्तरिक, व्यक्तिगत और सामूहिक राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय, मतलब यह कि जीवन के एक-एक अंग के बारे

में हिदायतें मौजूद हैं। यह स्थान किसी और किताब को न प्राप्त हुआ था, चुनांचे अल्लाह ने अपनी पिछली किताबों और हिदायतों में से किसी को भी हर पहलू से मुकम्मल नहीं क़रार दिया था। यह केवल क़ुरआन मजीद है, जिसके उतरने पर यह एलान किया गया कि :—

'आज मैंने तुम्हारे लिए 'दीन' को मुकम्मल कर दिया और तुम पर अपनी नेमत पूरी कर दी।' माइद:७

आयत का उद्देश्य बिल्कुल स्पष्ट है और वह यह कि मानव-जाति के आरम्भ से जिस हिदायत के आने का सिलसिला जारी चला आ रहा था और जो अपनी मौलिक शिक्षाओं में सदैव समान रहने के बावजूद विस्तार में ज़रूरत के मुताबिक़ बराबर बदलती और सांस्कृतिक विकास के साथ-साथ व्यापकता अपनाती चली जा रही थी—वह अब हर पहलू से उच्चतम बिन्दु को पहुंच चुकी है।

३. क़ुरआनी शिक्षाएं हर ज़माने के आदमी के लिए हैं। इन पर किसी विशेष युग की प्रमुख आवश्यकताओं या किसी विशेष जाति के प्रमुख गिरोही तक़ाज़ों की छाप नहीं है। वे किसी जाति या किसी नस्ल को अपने सामने नहीं रखतीं, बल्कि केवल मनुष्य और मानव-प्रकृति को सामने रखती हैं। इसलिए वे हर युग, हर जाति, हर नस्ल और हर क्षेत्र के लोगों के लिए समान रूप से उचित, उपयोगी और उनकी आवश्यकताएं पूरी करने में समर्थ हैं, जबकि दूसरी हर किताब का हाल यह है कि उस पर किसी विशेष जाति के ख़ास हालात की छाया हर आंख को दूर ही से दिखाई दे जाती है, इसलिए दूसरी जातियों के लिए उसके उचित व उपयोगी होने का प्रश्न ही नहीं पैदा होता। क़ुरआन मजीद की यह प्रमुख

विशेषता है जिसके कारण उसने अपने लाए हुए 'दीन' को 'स्वाभाविक धर्म' (सूरः रूमः ३०) कहा है और संसार के सामने खुले शब्दों में यह एलान कर रखा है कि :–

'निस्सन्देह यह क़ुरआन वह राह दिखाता है जो सबसे ज़्यादा सीधी है।' -बनी इसराईल : ९

४. यह अल्लाह की आख़िरी किताब है। इसके बाद 'हिदायत' के आने का सिलसिला ख़त्म हो चुका है। अब कोई और किताब या कोई और साहिबे किताब (अर्थात रसूल) नहीं आएगा। क़ुरआन का लाने वाला पैग़म्बर इस सिलसिले में यह स्पष्ट कर चुका है कि :–

'इसमें कोई सन्देह नहीं कि रिसालत और नबूबत का सिलसिला ख़त्म हो चुका है। बस, मेरे बाद अब न कोई रसूल आएगा, न कोई नबी।' –तिर्मिज़ी

और क़ुरआन अपने लाने वाले के बारे में अल्लाह का यह फ़ैसला बताता है कि :–

'बल्कि वह अल्लाह का रसूल और सबसे आख़िरी नबी है।'

इस सम्बन्ध में यह बताना ज़रूरी है कि क़ुरआन और साहिबे क़ुरआन सल्ल० के सिवा किसी और किताब और पैग़म्बर का हाल यह न था।

५. इस किताबे इलाही ने पिछली सारी आसमानी किताबों को मंसूख़ (निरस्त) कर दिया है और अब कोई दूसरी किताब अल्लाह की ओर से मन्ज़ूर शुदा बाक़ी नहीं रह गई है। अब जीवन का सही रवैया और आचार-विचार का फ़ायदेमन्द तरीक़ा सिर्फ़

इसी क़ुरआन से मिल सकता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि दूसरी किताबों के किताबे इलाही होने से इन्कार कर दिया गया है, बल्कि यह है कि जिस सच्चे उपास्य और वास्तविक शासक ने इन किताबों को उतारा था, उसी का अब यह फ़ैसला है कि इन किताबों को आगे से आचार-संहिता और जीवन-विधान न बनाया जाये और केवल इस क़ुरआन, मेरी इस आख़िरी किताब ही को यह हैसियत दी जाय। इस ख़ुदाबन्दी फ़ैसले के अनुसार अरब व ग़ैर-अरब, काले और गोरे, एशियाई और योरुपीय, सबके लिए ज़रूरी है कि वे क़ुरआन ही का पालन करें, क्योंकि अब उसी का पालन अल्लाह की बन्दगी क़रार पा सकेगा। अल्लाह का फ़ैसला जिन शब्दों में वर्णित है, वे इस प्रकार हैं:-

'निस्सन्देह (अब) अल्लाह के नज़दीक (प्रिय व स्वीकृत) दीन इस्लाम है।'

-आले इमरान

''जो कोई इस्लाम के सिवा किसी और दीन को पसन्द करेगा, तो (अल्लाह के दरबार में) उसकी ओर से उस दीन को हरगिज़ न क़ुबूल किया जाएगा।'

-आले इमरान

यहां इस स्पष्टीकरण की कोई ज़रूरत नहीं कि इन आयतों में सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पहलुओं से जिस 'दीने इस्लाम' के बारे में यह साफ़ एलान किया गया है, वह 'क़ुरआनी दीन' ही का जाना पहचाना नाम है। इसलिये यह कहना कि इस्लाम के सिवा अब कोई दीन अल्लाह के नज़दीक प्रिय और मान्य नहीं, वास्तव में यह कहना है कि अब क़ुरआन के सिवा कोई भी दूसरी किताबे इलाही अल्लाह के हुज़ूर स्वीकार करने योग्य बाक़ी नहीं रह गई है। इस बात का और अधिक समर्थन और इसकी और अधिक व्याख्या इस बात से भी हो जाती है कि

यहूदियों और ईसाइयों में से जो लोग क़ुरआन पर ईमान नहीं लाए, उन्हें उसने खुले शब्दों में कुफ़्र करने वाला, अल्लाह का द्रोही और अज़ाब का अधिकारी ठहराया है।

-बय्यिनः, १, निसाः १५०-१५१)

६. क़ुरआन पर ईमान लाना और उसका पालन करना निजात (मुक्ति) की शर्त है। कोई व्यक्ति भी इसका इन्कार करके आख़िरत में घाटे और तबाही से नहीं बच सकता। किसी भी दूसरी किताबे इलाही का पालन मनुष्य का बशर्ते कि उसे क़ुरआन की दावत पहुंच चुकी है) निजात का हक़दार नहीं ठहरा सकता। यह हक़ीक़त भी उपरोक्त दोनों आयतों का बिल्कुल ज़रूरी तक़ाज़ा है। इसीलिए दूसरी आयत, 'जो कोई इस्लाम के सिवा किसी और 'दीन' को पसन्द करेगा तो (अल्लाह के दरबार में) उसकी ओर से उस दीन को हरगिज़ क़ुबूल न किया जायेगा' के बाद वाले शब्दों में इसकी व्याख्या भी कर दी गई है, जो यह है:-

'और वह आख़िरत में घाटा उठाएगा।'

७. इस समय केवल यही एक ऐसी किताब है जो पूरी तरह सुरक्षित रह गई है, जिसमें न कोई कमी हुई है, न ज़्यादती हुई है, न किसी प्रकार का कोई परिवर्तन हुआ है। यह जिस भाषा में, जिन शब्दों में, जिन वाक्यों में और जिस क्रम के साथ अल्लाह के पास से उतरी थी, ज्यों की त्यों उसी रूप में मौजूद है और ऐसा अल्लाह के विशेष प्रबन्ध के कारण हुआ है, जिसका उसने अपनी इस किताब के अन्दर ही एलान फ़र्मा रखा है:-

'निश्चय ही यह क़ुरआन हमने उतारा है और निश्चय ही हम स्वयं इसे सुरक्षित रखने वाले हैं।' -हिज

स्पष्ट है कि अल्लाह के इस प्रबंध, इस एलान और इस फ़ैसले को समय नहीं बदल सकता था। ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह एक मान्य सत्य ही है कि कुरआन में तनिक भी कोई परिवर्तन नहीं हो सका है, (यह बहस पूरी दलील और विस्तार के साथ आगे आ रही है)

इसके मुक़ाबले में दूसरी किताबों का हाल यह है कि न तो उन के बारे में अल्लाह की ओर से सुरक्षित रखने की कोई घोषणा हुई थी और न प्रबन्ध ही, न वे आज ऐतिहासिक खोजों की कसौटी पर सुरक्षित सिद्ध की जा सकती हैं, यहां तक कि किसी किताब के मानने वाले और पालन करने वाले भी, उसके बारे में यह दावा करने की गुंजाइश नहीं पाते कि यह किताब उसी भाषा, उन्हीं शब्दों और उन्हीं वाक्यों में ठीक-ठीक सुरक्षित चली आई है, जिनमें कि ख़ुदा की ओर से उतरी थी और इसमें किसी एक वाक्य, एक उपवाक्य और एक शब्द की भी कमी-बेशी नहीं हो सकी है। इस सिलसिले में जहां तक कुरआनी गवाही का ताल्लुक़ है, वह भी हर उस किताब के बारे में, जिसका उसके भीतर उल्लेख हुआ है, यही है, तौरात और इंजील दोनों के बारे में उसने फ़र्माया है कि उनके मानने वाले यहूदियों और ईसाइयों ने उनके कुछ भागों को तो बदल डाला है (उसके स्थानों से हटा कर शब्दों में घट-बढ़ कर देते हैं....माइदः) और कुछ बातों को भुला करके रख दिया है। ('और भुला दिया कुछ बातों को, जिससे उन्हें याददेहानी होती थी'-माइदः)

कुरआन मजीद की इस प्रमुख विशेषता का एक पहलू यह भी है कि वह जिस भाषा में उतरा है, वह एक जीवित भाषा है। आज एशिया और अफ्रीक़ा के बीसियों देशों के रहने वाले करोड़ों व्यक्ति इसे बोलते हैं और इसके जानने और समझने वालों की

संख्या तो और भी अधिक है। दूसरे शब्दों में वह एक वैज्ञानिक, जन-सामान्य की और अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है। इसके विपरीत, वे तमाम भाषायें, जिनमें दूसरी किताबें उतरी थीं, सामान्य जीवन से बिल्कुल दूर हो चुकी हैं और उनमें से कोई एक भी ऐसी नहीं जिसे जीवित भाषा कहा जा सके। किसी किताब की मूल भाषा का एक जीवित भाषा के रूप में बाक़ी रहना—उसके सुरक्षित रहने के लिए जितना ज़रूरी है, इसके लिए किसी व्याख्या या दलील की ज़रूरत नहीं।

८. अल्लाह की बुनियादी हिदायत और उसका असल 'दीन' हमेशा से क्या रहा है? इस बात के फ़ैसले का कुल अधिकार केवल क़ुरआन को प्राप्त है, क्योंकि दूसरी कोई और किताब ऐसी मौजूद ही नहीं, जो अपने मूल रूप में पूरी तरह सुरक्षित रह गई हो, इसलिए विशुद्ध और बे-मिलावटी हिदायत का कहीं और पाया जाना भी सम्भव नहीं। इस प्रकार सच्चाई केवल यही नहीं है कि क़ुरआन की शिक्षायें अपने मूल रूप में ज्यों की त्यों सुरक्षित हैं, बल्कि यह भी है कि अब दूसरी किताबों की असली शिक्षाओं का पता भी स्वयं उनके अपने पृष्ठों में नहीं, बल्कि क़ुरआन ही के पृष्ठों में मिल सकता है। दूसरी किताबों के भीतर घट-बढ़ हो जाने के कारण यह बुद्धि का खुला तक़ाज़ा तो है ही, इस पर अल्लाह की सनद भी मौजूद है। उसने फ़र्माया है—

'हे मुहम्मद! हमने तुम्हारी ओर यह किताब, सत्य के साथ उतारी है, जबकि वह अपने से पहले वाली किताबों (की भविष्य-वाणियों) के अनुसार और उसकी 'मुहैमिन' भी है।

—माइद: ४८

'मुहैमिन' का अर्थ है निगरां और रक्षक। क़ुरआन मजीद पिछली किताबों का निगरां और रक्षक है अर्थात् उनके मूल

सन्देश पर मिलावटों और परिवर्तनों के जो पर्दे डाल दिए गए हैं उन्हें हटा देता है और इस प्रकार उनकी मूल शिक्षाओं का निर्धारण कर देता है। इसका अर्थ साफ़-साफ़ यह हुआ कि अगर इस समय कोई यह जानना चाहे कि फ़्लां किताब की मूल शिक्षा क्या थी, तो उसके लिए इस उद्देश्य में सफलता प्राप्त करने का केवल एक ही रास्ता है और वह यह कि वह स्वयं उस पुस्तक के पन्ने उलटने के बजाय क़ुरआन को देखे, क्योंकि उनकी मूल शिक्षाएं भी केवल यहीं मिल सकती है। फिर इतना ही नहीं, इस स्थिति के तक़ाज़े तो इससे भी आगे तक जाते हैं और वह यह कि अब इन किताबों का भी सही और वास्तविक पालन क़ुरआन मजीद ही का पालन करके हो सकता है।

९. क़ुरआन मजीद के किताबे इलाही होने का व्यावहारिक सबूत मौजूदा तथ्यों और हर उन ताज़ा गवाहियों पर स्थापित है, अतीत की कुछ घटनाओं को नक़ल करने की ज़रूरत नहीं और इस का कारण यह है कि क़ुरआन अपने किताबे इलाही होने का सबूत भी स्वयं ही है, क्योंकि वह अपने आंतरिक गुणों और अपने प्रत्यक्ष परिणामों, मतलब यह कि हर पहलू से एक चमत्कार है, हर आंख वाले को दिखाई दे जाने वाला चमत्कार। यह सम्भव नहीं कि कोई सत्यप्रिय उसके इन गुणों और अमली बरकतों को दिल की आंखें खोलकर देखे और उसके कानों में ये शब्द गूंज न उठें कि ख़ुदा की क़सम! यह इन्सानी कलाम नहीं हो सकता (जैसा कि पिछली बहस से पूरी तरह स्पष्ट हो चुका है) इसका अर्थ यह हुआ कि क़ुरआन जहां भी मौजूद होगा, जिस तरह भी पेश किया जायेगा, जिस समय और जिस स्थान पर भी पढ़ा जाएगा, वहां उसकी सत्यता की दलील भी मौजूद होगी और वह किसी समय भी नज़रों से ओझल दलीलों का मुहताज न होगा। दूसरे शब्दों में इस किताब

का वजूद और इसका सन्देश जीवित, सुरक्षित और स्थायी ही नहीं, बल्कि उस के कलामे इलाही होने का सबूत भी जीवित, सुरक्षित और स्थायी है—जबकि दूसरी किताबों का हाल इससे बिल्कुल भिन्न है, क्योंकि उनकी सत्यता का प्रमाण स्वयं उनके भीतर मौजूद नहीं कि आंखों के सामने पा लिया जाए, बल्कि भूतकाल के इतिहास में है, जिसे देख सकने के लिए पीछे दूर तक मुड़ना पड़ता है। तौरात अल्लाह की किताब उस समय साबित होती है, जब पहले उसके पेश करने वाले व्यक्तित्व को 'लाठी' और 'रोशन हाथ' सरीखे अनुभूतिपरक और सामयिक चमत्कारों के आधार पर रसूले ख़ुदा मान लिया गया हो। इन्जील की सत्यता उस समय तक विवाद का विषय बनी रहेगी, जब तक कि मुर्दों को ज़िंदा, कोढ़ियों को तन्दुरुस्त और अंधों को आंख वाला कर देने की दो हज़ार वर्षीय पुरानी घटनायें हज़रत ईसा को अल्लाह का भेजा हुआ रसूल साबित न कर दें। स्पष्ट है कि इन किताबों की सत्यता का यह प्रमाण उन लोगों के लिए तो अवश्य ही प्रत्यक्ष प्रमाण था, जिन्होंने इन चमत्कारों को स्वतः देखा था, लेकिन बाद के लोगों के लिए उसकी हैसियत यह नहीं रह गई है, बल्कि परोक्ष प्रमाण की हो चुकी है। एक व्यक्ति पहले तो उस पूरे सिलसिले का विश्वसनीय होना ही जांचे-परखेगा, जिसके ज़रिए इन चमत्कारों की ख़बर उस तक पहुंची है, फिर इस खोज के नतीजे में अगर उसे सन्तोष हो गया कि यह सिलसिला और सूचना का यह साधन विश्वास करने योग्य है, तब कहीं जाकर इन किताबों का अल्लाह की ओर से होना इसके लिए स्वीकार्य हो सकेगा, लेकिन क़ुरआन मजीद की सत्यता का प्रमाण इस बात पर बिल्कुल आधारित नहीं है, कि उसके पेश करने वाले के सामयिक चमत्कार क्या हैं, जो बाद के लोगों के लिए मात्र एक सूचना बन कर रह गये हों, बल्कि

विशुद्ध बौद्धिक चमत्कार, जो हर ज़माने में और हर व्यक्ति के सामने एक जीवित तथ्य बना मौजूद है और मानव-जाति के एक-एक व्यक्ति को प्रत्यक्ष सोच-विचार के लिए पुकार रहा है। हज़रत मुहम्मद सल्ल० ने इसी स्थिति को स्पष्ट किया था, जब यह कहा था कि–

'हर नबी को इतने और ऐसे मोअजज़े (चमत्कार) दिए गए जिनको देख कर लोग उस पर ईमान ला सके हों, और मुझे जो (महत्वपूर्ण) मोअजज़ा दिया गया है, वह तो यही कलामे इलाही (अर्थात् क़ुरआन) है, जिसकी अल्लाह ने मुझ पर वह्य फ़र्मायी है।''

–बुख़ारी, अध्याय 'क़ुरआन की महानता'

अपने इस कथन में हज़रत मुहम्मद सल्ल० क़ुरआन मजीद ही को अपना 'कुल मोअजज़ा' क़रार दे रहे हैं, हालांकि आपको कई और मोअजज़े भी दिए गए थे, इसलिए आपके फ़र्माने का अर्थ यह हुआ कि आपका वास्तविक और सबसे बड़ा मोअजज़ा (चमत्कार) सिर्फ़ क़ुरआन था और उसके मुक़ाबले में दूसरे मोअजज़ों का कोई विशेष महत्व नहीं था। ख़ुद क़ुरआन मजीद ने भी इस सत्य की ओर इशारा कर रखा है। क़ुरैश की ओर से चमत्कारों की जो मांग बार-बार हुआ करती थी, उसका उल्लेख करते हुए एक जगह फ़र्माया गया है कि–

'क्या (ये लोग मोअजज़े मांगते हैं) और इनके लिए मोअजज़े के तौर पर यह बात काफ़ी नहीं है कि (ऐ नबी!) हमने तुम पर यह किताब नाज़िल फ़र्मा रखी है, जो उन्हें पढ़कर सुनाई जा रही है।'

-अनकबूत : ५१

ये हैं क़ुरआन मजीद के वे प्रमुख गुण और विशेषतायें, जो उसे दूसरी किताबों के मुक़ाबले में प्राप्त हैं। विचार करने पर साफ़

नज़र आएगा कि ये अलग-अलग और आपस में कोई सम्बन्ध न रखने वाले गुण नहीं, बल्कि इन सब में एक गहरा सम्बन्ध पाया जाता है और यह सब वास्तव में एक ही सच्चाई के अलग-अलग तक़ाज़े हैं–

जो किताब पूरी मानव-जाति के लिए आई हो और अल्लाह का आख़िरी हिदायतनामा हो, ज़रूरी था कि हर पहलू से मुकम्मल भी हो, वह ख़ालिस उसूली हो और सारे इन्सानों के लिए तो उसके बाद सारी आसमानी किताबें मन्सूख़ क़रार दे दी जायें, आख़िरत की निजात के लिए उसके पालन को ज़रूरी ठहरा दिया जाए, वह उस समय तक, जब तक कि इस ज़मीन पर इंसान मौजूद है, पूरी तरह सुरक्षित भी रखी जाए और सबसे आख़िरी बात यह कि उसके किताबे इलाही होने का बुनियादी सुबूत भी प्रत्यक्ष और स्थाई हो, ताकि जब भी इस महत्वपूर्ण दावे को कोई गम्भीरता के साथ परखना चाहे, वह अपने लिए सन्तोष कर लेने का पूरा सामान अपने सामने ही मौजूद पा ले।

क़ुरआन पढ़ना–एक ज़िम्मेदारी

कोई शक नहीं कि ऊपर की बहस क़ुरआन के उतरने को दुनिया की सबसे महत्वपूर्ण घटना और क़ुरआनी दावत को इन्सानियत की सबसे महत्वपूर्ण समस्या बना देती है। वे एक-एक व्यक्ति से मांग करती है कि वह क़ुरआन के मामले में लापरवाही न बरते और उसके अध्ययन को सबसे अहम और सबसे बड़ी ज़िम्मेदारी समझे। जो लोग 'मुसलमान' हैं और क़ुरआन की इस हैसियत को मान चुके हैं, उनकी हद तक इस ज़िम्मेदारी की अदायगी तो यह है कि वे उसके हुक्मों और हिदायतों को समझें, नजर में रखें और सच्चे दिल से उनका पालन करें और जो

मुसलमान नहीं है और क़ुरआन के मानने वालों के क्षेत्र से बाहर हैं, उनके लिए इस ज़िम्मेदारी का अर्थ बुनियादी तौर पर यह है कि वे पूरी इमानदारी के साथ उसकी हैसियत के बारे में खोज करें। किसी के ग़ैर-मुस्लिम होने का अर्थ यह नहीं है कि वह क़ुरआन से कोई मतलब न रखे। यह अर्थ हो सकता, अगर क़ुरआन अपनी हैसियत सिर्फ़ एक आम किताबे इलाही की क़रार देता, क्योंकि ऐसी हालत में दूसरी आसमानी किताबों के मानने वाले के लिए ज़रूरी न होता कि वे इसके बारे में कुछ मालूम करने की कोई ज़िम्मेदारी उठायें, लेकिन जब वह अपनी हैसियत यह बताता है कि वह ऐसी किताबे इलाही है, जो-सारी दुनिया के लिए उतारी गई है, जिसके बाद दूसरी तमाम किताबें अल्लाह ने मन्सूख़ क़रार दे दी हैं और अब संसार में अल्लाह की भक्ति व आज्ञापालन का और आख़िरत में कामयाबी और निजात पूरी की पूरी उसी के पालन पर निर्भर है—तो फिर मामला बड़ा गम्भीर बन जाता है और किसी ग़ैर-मुस्लिम के लिए इस बात के सही होने का कोई कारण नहीं रह जाता कि वह उस क़ुरआन पर एक उचटती नज़र डालता हुआ लापरवाही के साथ आगे बढ़ जाए और उसके दावे को कोई महत्व न दे। ऐसा करके वह अपने सर्वोत्तम हित के साथ अन्याय करेगा और बड़ी ही नासमझी का सबूत देगा, क्योंकि वह जीवन की जिस यात्रा में लगा है, उसके बारे में उसे सूचित किया जा रहा है कि यह यात्रा उसे सफलता की मंज़िल पर उसी समय पहुंचा सकती है, जब कि वह क़ुरआन की रहनुमाई क़ुबूल कर चुका हो, लेकिन वह है कि इस आवाज़ को सुनने और उसकी वास्तविकता जानने की ओर ध्यान ही नहीं देता। यह सही है कि क़ुरआन का यह एलान उसके नज़दीक सिर्फ़ एक दावा है और ज़रूरी नहीं कि हर दावा सच्चा ही हो, लेकिन यह भी तो ज़रूरी नहीं कि हर दावा सत्य के प्रतिकूल ही हो। इसलिए किसी संजीदा

दावे के बारे में जब तक किसी की दायित्यपूर्ण खोज उसे इस यक़ीन तक न पहुंचा दे कि वह ग़लत है, उस समय तक वह अगर उसको सच्चा नहीं कह सकता तो झूठा भी नहीं कह सकता। क़ुरआन के इस दावे का कम से कम एक संजीदा और विचारणीय दावा होना तो उसी तरह स्पष्ट है जैसे दोपहर का सूर्य, क्योंकि अगर किसी के सामने इस प्रकार की वैज्ञानिक व बौद्धिक दलीलें नहीं आई हैं, जैसी कि क़ुरआन की सत्यता पर पिछले पृष्ठों में बयान की गई हैं, तो क्या उसकी आंखों को यह व्यावहारिक दलील नहीं दिखाई दे रही है कि करोड़ों इन्सान क़ुरआन के इस दावे को मानते चले आ रहे हैं और जब भी इसे स्वीकार करने का हक़ अदा किया गया है, व्यक्ति की, समाज की, राज्य की, मतलब यह कि हर प्रकार के जीवन में भलाई और सदाचार की बहारें आ गई हैं? यह तो बाहर की बातें हैं, जिनके जानने के लिए किसी छान-बीन की भी ज़रूरत नहीं। इसलिए यह बड़ी अनुचित और हठधर्मी की बात होगी कि अगर कोई व्यक्ति क़ुरआन के किताबे इलाही होने के दावे को एक संजीदा और विचारणीय दावा भी न समझे। यह दावा निश्चित रूप से एक संजीदा और विचारणीय दावा है और किसी दावे के संजीदा और विचारणीय होने का मान्य अर्थ यह होता है कि शुरू में और छान-बीन से पहले उसके सही होने की भी वैसी ही सम्भावना है जैसी कि उसके ग़लत होने की सम्भावना है। इसलिए इन्साफ़ का बुनियादी तक़ाज़ा यह है की क़ुरआन के इस दावे को हर ग़ैर-मुस्लिम शुरू में यही हैसियत दे और फिर उसके औचित्य को जांचने और सच्चाई मालूम करने की पूरी-पूरी कोशिश करे और अवश्य ही करे, क्योंकि अगर यह दावा सही निकला, जो बहरहाल संभव है तो क़ुरआन उसकी महान पूंजी बन जायेगा, ऐसी पूंजी, जिसे न पा कर उसका जीवन

शाश्वत दुख की भेंट चढ़ जाने वाला है। स्पष्ट है कि कोई बुद्धिजीवी किसी ऐसी चीज़ को कभी भी नज़रन्दाज़ नहीं कर सकता, जो उसकी सब से मूल्यवान पूंजी और शाश्वत राहत का सामान होने की पचास प्रतिशत सम्भावना रखती हो और छान-बीन के बाद शत-प्रतिशत विश्वास में भी निश्चित रूप से बदल सकती हो।

क़ुरआन, कैसे उतरा और संकलित हुआ?

हज़रत मुहम्मद सल्ल० पर क़ुरआन उतरने का आरम्भ रमज़ान के महीने में हुआ जिसे वह स्वयं स्पष्ट करता है कि :–

'रमज़ान का महीना वह महीना है जिससे क़ुरआन का उतरना (शुरू) हुआ।'
—बक़र: १८५

ईसवी सन से यह अगस्त ६१० ई० का ज़माना था। सब से पहली वह्य जिस समय उतरी, आप मक्का की बाहरी पहाड़ियों में एक गुफा, हिरा की गुफा में चिन्तन-मनन में लीन थे। वह्य के सिलसिले की अरम्भिक कड़ी सूर: अलक़ की निम्न पांच आयतें हैं:–

'(हे मुहम्मद!) पढ़ अपने पालनहार के नाम से, जिसने पैदा किया, पैदा किया इन्सान को जमे हुए ख़ून से। पढ़, और तेरा रब बड़े करम (दया व कृपा) वाला है, जिसने क़लम के ज़रिए इल्म (ज्ञान) सिखाया, आदमी को वह कुछ सिखाया, जो वह न जानता था।'

उस समय आपकी उम्र ईसवी वर्ष से लगभग ३९ साल साढ़े तीन महीने और चांद के महीने के हिसाब से ४० साल साढ़े छः महीने थी। वह्य का यह मुबारक सिलसिला २३ वर्ष की लम्बी अवधि तक चलता रहा। आख़िरी वह्य सूर: तौब: की आख़िरी दो आयतें थीं और सन् ६३३ ई० में आपकी मृत्यु से कुछ दिन पहले

उतरी थीं। इस अवधि में से आधे से अधिक अर्थात लगभग साढ़े बारह साल तो मक्का में बीते और शेष दस वर्ष मदीना में। मक्की युग में जो सूरतें उतरीं, उनकी संख्या ९० है, जो पूरे क़ुरआन का लगभग दो तिहाई भाग है। मदीना में उतरने वाली सूरतों की तायदाद २४ है, जो लगभग एक तिहाई क़ुरआन है। इस तरह कुल सूरतों की संख्या ११४ है। इन ११४ सूरतों की कुल आयतों, शब्दों और अक्षरों को अगर गिना जाए तो उनकी संख्या क्रमवार ६२३६, ७७९३३ और ३३२०१५ होगी।

उतरने की स्थिति

मात्र यह बात कि पूरा क़ुरआन २३ साल की लम्बी मुद्दत में उतरा है, न तो इस विचार और कल्पना की कोई गुंजाइश बाक़ी रहने देती कि वह एक ही बार में पूरे का पूरा अल्लाह की ओर से नबी सल्ल० के हवाले कर दिया गया होगा और न इस विचार की कि उसकी हैसियत भी सामान्य रचनाओं और पुस्तकों जैसी होगी, जिनमें विशुद्ध वैज्ञानिक और कलात्मक ढंग से एक निश्चित विषय के बारे में वार्त्तायें हुआ करती हैं। चुनांचे सही स्थिति का स्पष्टीकरण वह स्वयं इस तरह करता है:—

'और ये लोग कहते हैं कि उसके ऊपर पूरा क़ुरआन एक ही बार में क्यों नहीं उतार दिया गया? तो हम उसे इसी तरह (थोड़ा-थोड़ा करके) उतार रहे हैं, ताकि उसके ज़रिये तुम्हारे दिल को मज़बूत करते रहें और हमने इसे पूरे प्रबन्ध के साथ ठहर-ठहर कर सुनाया है।' —अल-फ़ुर्क़ान : ३३

क़ुरआन मजीद पूरे का पूरा एक ही बार में नहीं, बल्कि थोड़ा-थोड़ा करके उतरा है। कभी कुछ आयतें ही उतरीं, तो कभी पूरी एक सूर: उतरी। दो वह्यों में कभी बहुत छोटा अवकाश

हुआ, तो कभी हफ़्तों और महीनों तक मौन रहा। इसका कारण यह था कि क़ुरआन मजीद केवल सैद्धान्तिक ही नहीं, बल्कि व्यावहारिक मार्ग-दर्शन भी है और इसका अवतरण एक आह्वान के साथ हुआ है, ऐसे आह्वान के साथ, जो व्यावहारिक विकासशील आह्वान था, जो एक बिन्दु से शुरू हुआ, आगे बढ़ा, बढ़ता रहा और फिर अनेक परिस्थितियों से होता हुआ सफलता के छोर तक पहुंचा था। ऐसे आह्वान की प्राकृतिक अपेक्षा यही थी कि क़ुरआन ठहर-ठहर कर उतरता और आह्वान की परिस्थितियों और उसकी ज़रूरतों को सामने रख कर ही नाज़िल होता।

इस बात को पूरी तरह समझने के लिए उचित होगा कि इस आह्वान की परिस्थिति और उसकी अमली शक्ल को भी सामने रख लिया जाये:—

साहिबे क़ुरआन सल्ल० ने जैसे ही अपनी नबूवत का एलान किया और एक अल्लाह की भक्ति और आज्ञापालन के लिए लोगों को पुकारा, मक्का के मुश्रिक (बहुदेववादी) और मूर्तिपूजक समाज में एक हलचल मच गई और पूरा माहौल इन्कार व मतभेद ही से नहीं, बल्कि क्रोध के शोलों से भी तमतमा उठा। केवल कुछ लोग थे जो आरम्भ की इस पुकार के वक़्त ठंडे मन से इस पर विचार कर सके और नतीजे में, उस पर ईमान लाने का सौभाग्य प्राप्त कर सके। वरना द्वेष और घृणा ही सामान्य प्रतिक्रिया थी, लेकिन स्पष्ट है कि यह प्रतिक्रिया न तो अप्रत्याशित थी और न इसके दबाव में आकर हज़रत मुहम्मद के मौन धारण पेश करने वाले का दबाव में आकर लेने का कोई प्रश्न था, इसलिये इतने सारे विरोध और प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद वह अपने कर्तव्य में बराबर लगे रहे और सुनने-समझने पर न तैयार होने वालों को भी अपनी बात सुना-समझा देने का हर सम्भव उपाय

और यत्न करते रहे जिसके नतीजे में लोग एक-एक, दो-दो करके बराबर इस्लाम-क्षेत्र में आते रहे। फिर जिस रफ़तार से यह क्षेत्र बढ़ता जा रहा था, उसी रफ़तार से विरोध और आक्रोश में तेज़ी भी पैदा होती जा रही थी, यहां तक कि मुसलमान होना मानो विपत्ति बुलाना था। आह्वान विरोधी धन, शक्ति, प्रभाव, सत्ता और बहुसंख्या सभी कुछ रखते थे और उनके मुक़ाबले में ईमान वाले कुछ भी न थे। बस यों समझिये कि शक्ति और शक्तिहीनता का मुक़ाबला था। ऐसी स्थिति में नबी सल्ल० और नबी के साथियों रज़ि० पर जो कुछ बीत सकता था, उसके विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं। खुल्लम-खुल्ला खुदा को एक कहने और नमाज़ पढ़ने की भी इजाज़त न थी, फिर भी आह्वान इन परिस्थितियों से जूझता और मुक़ाबला करता हुआ आगे बढ़ रहा था, यहां तक कि दस-बारह वर्ष बीतते-बीतते एक निर्णायक मोड़ पर आ गया। क़ुरैश के सारे क़बीलों ने एक मत होकर तय किया कि अब उसे और अधिक छूट न दी जाये और मुहम्मद (सल्ल०) को क़त्ल करके हमेशा के लिये इस 'फ़ितने' की जड़ काट दी जाये। जब बात इस हद को पहुंच गई, तो अल्लाह ने अपने रसूल को और उसके ईमान वाले साथियों को हिदायत फ़र्मा दी कि मक्का छोड़ दें और मदीना चले जायें, जो मक्का के बाद पूरे देश में अकेली एक ऐसी जगह थी, जहां उस समय इस पैग़ाम को सुना गया था और एक अच्छी-भली संख्या उस पर ईमान भी ला चुकी थी। चुनांचे हज़रत मुहम्मद सल्ल० और आप के साथी अपना घर-बार छोड़कर मदीना चले गये, फिर तो यही स्थान दावत का मरकज़ भी बन गया। यहां के हालात ऐसे थे कि ईमान वाले मक्का की तरह न रहे कि सताये जाते, दबाये और कुचले जाते, बल्कि उन्हें ज़रूरी हद तक एक स्वतन्त्र वातावरण मिल गया,

जिसमें उन्हें जीवन बिताने का पूरा-पूरा अधिकार प्राप्त था। दूसरे शब्दों में यह कि एक प्रकार का अपना स्वतन्त्र राज्य वजूद में आ गया। इसके अलावा स्वयं दावत का क्षेत्र भी विस्तृत हो गया। मक्का यें यह क्षेत्र मुशिरकों तक ही सीमित था, लेकिन मदीना में मुशिरकों के साथ-साथ किताब वाले (ईसाई या यहूदी) भी उस के क्षेत्र में आ गये क्योंकि इस जगह ये लोग भी भारी संख्या में आबाद थे, इसलिये विश्व-व्यापी पैग़ाम होने के कारण ज़रूरी था कि इसे उन तक भी पहुंचाया जाये। आरम्भ में इस सिलसिले की कोशिशों का नतीजा, आशा के अनुसार, यहां भी इन्कार और इक़रार, विरोध और समर्थन, दोनों ही रूप में ज़ाहिर हुआ। कुछ लोग ईमान लाये, ज़्यादातर ने विरोध किया, ख़ास तौर से यहूदी आबादी का तो ९९ प्रतिशत भाग अन्त तक विरोधी ही रहा। लेकिन यहां कुफ़्र और इस्लाम की शक्तियों का अनुपात, चूंकि यह नहीं था, जो मक्का में रह चुका था, इस लिए यह विरोध भी अत्याचार करने और दुख पहुंचाने का वह रूप नहीं अपना सका, जिससे मक्का में मुक़ाबला हो चुका था। यहां इस्लाम को सामाजिक और राजनीतिक आधिपत्य प्राप्त था, इसलिए इन विरोधियों ने भी खुले संघर्ष के बजाए ख़ुफ़िया चालों और षड़यन्त्रों की नीति अपना ली। इस पालिसी के तहत मुस्लिम समाज में इस्लाम के बहुत से झूठे दावेदार भी घुस आये, जिन्हें मुनाफ़िक़ (कपटा-चारी) कहते हैं। इस तरह जहां मक्का में सत्य-आह्वान के विरुद्ध केवल एक मोर्चा खुला हुआ था, यहाँ दो मोर्चे खुल गए-एक तो उन के खुले हुए शत्रुओं अर्थात काफ़िरों व मुशिरकों का, दूसरा उसके छिपे हुए दुश्मनों अर्थात मुनाफ़िक़ों का। ये आस्तीनों के सांप इस्लामी आह्वान के लिए एक नई मुसीबत और एक भारी समस्या थे, क्योंकि इन्होंने इस्लाम की इमारत को ढा

देने के लिए स्वयं उसी में पनाह ले रखी थी। इधर हिजरत के बाद मक्का वालों ने भी मुसलमानों के चले जाने से इत्मीनान की सांस नहीं ली थी, बल्कि अपनी इच्छाओं, चालों और यत्नों के बावजूद, आह्वान को यों फलते-फूलते देख कर वे और अधिक बेचैन रहने लगे थे और जंगी कार्रवाई करके उसे पूरी तरह दबा डालने की चिन्ता में डूबे हुए थे। मदीना के यहूदियों और मुनाफ़िक़ों ने उन से खुफ़िया सम्पर्क बनाया और उन्हें हर प्रकार से उकसाने लगे। मुसलमानों को मदीना आये अभी पूरे दो वर्ष भी नहीं बीते थे उन्होंने ज़बरदस्त तैयारियों से उनके ख़िलाफ़ जंगी कार्रवाई शुरू कर दी। ज़ाहिर है कि ऐसी स्थिति में नबी और उसके साथियों को यहां भी शांति नहीं मिल सकती थी। इसलिए वर्षों स्थिति यही बनी रही कि मक्का के मुशिरक रह-रह कर उन पर हमला कर रहे हैं, मुनाफ़िक़ अन्दर से ख़तरा बने हुए हैं, यहूदी फ़ितने पैदा कर रहे हैं और षड़यन्त्र रच रहे हैं। इस प्रकार यद्यपि आह्वान जड़ पकड़ चुका है और एक शक्ति बन कर क़दम आगे बढ़ा रहा है, मगर विरोधों का जमघट भी घटने के बजाए बढ़ता ही जा रहा है। अन्ततः यह संघर्ष आह्वान के पक्ष में अपना खुला निर्णय देने लगता है, विरोधी शक्तियों पर रौब छा जाता है। असल दुशमन यानी मक्का वाले भी अब युद्ध और 'युद्ध की स्थिति' की जगह समझौते कर लेने पर मजबूर हो जाते हैं, लेकिन चूंकि सीने की आग बराबर भड़की जा रही है, इसलिए मौक़ा पाकर समझौते के विरुद्ध कुछ कर बैठते हैं। इसके बाद हज़रत मुहम्मद सल्ल० अपने हज़ारों साथियों के साथ मक्का का रुख़ कर लेते हैं। शत्रुओं को अब मुक़ाबले में आने का साहस नहीं होता, इसलिए एक तलवार उठे बिना ही आप नगर के भीतर विजयी बन कर दाख़िल होते हैं और क़ुरआनी दावत के असल मरकज़ 'काबा' को शिर्क के

एक-एक निशान से पाक कर लेते हैं। इस खुली हुई और पूरी जीत के बाद पूरे अरब में इस्लाम एक आंधी बनकर छा जाता है। लोग गिरोह दर गिरोह इस्लाम में दाख़िल होने लगते हैं और अब पूरे देश में इस्लाम ही असल ताक़त बन जाता है। मुस्लिम समाज़ अपने विकास के सारे स्वाभाविक और ज़रूरी मरहलों से गुज़रता हुआ हर हैसियत से एक पूर्ण समाज बन चुका होता है और इस बात के लिए बिल्कुल स्वतन्त्र होता है कि अपना पूरा जीवन, जिस तरह चाहे, बिताये, जिस नियम और जिस क़ानून पर चाहे अमल करे, कोई बाहरी रुकावट उसकी राह का रोड़ा बाक़ी नहीं रह जाती—इस प्रकार यह दावत अरब में तमाम ऊंचाइयों को छू लेती है।

यह है इस आह्वान की विकास-यात्रा का संक्षिप्त इतिहास। जो क़ुरआन इस प्रकार के आह्वान के साथ और उसका व्यावहारिक पथ-प्रदर्शक बन कर उतरा था, उसके एक ही साथ उतरने का कोई औचित्य न था। उसके उतरने की शक्ल तो स्वाभाविक रूप से इसके सिवा और कोई हो ही नहीं सकती थी कि वह उस वक़्त से शुरू हो, जिस वक़्त यह आह्वान शुरू हुआ था और उस वक़्त ख़त्म हो, जिस समय यह आह्वान अपनी ऊंचाइयों को पहुंचा था और इस बीच उसके विभिन्न हिस्से थोड़े-थोड़े समय के साथ, इस क्रम के साथ उतरते रहें, जिसका दावत के हालात और उसकी ज़रूरतें तक़ाज़ा करती जा रही थीं अर्थात आरम्भ में आह्वान की केवल मौलिक बातें ही रखी जायें, उनके सत्य होने की दलीलें दी जायें, और उन पर ईमान लाने या न लाने के परिणामों को स्पष्ट किया जाये, फिर वह्य उतरने की रफ़्तार भी अभी तेज़ न हो, ताकि लोगों को इस आह्वान के बारे में पूरी तरह विचार कर लेने का अवसर मिल जाए। इसके बाद ईमान लाने की मांग में तेज़ी पैदा हो, हुज्जत पूरी करने के तमाम

ज़रूरी तक़ाज़े पूरे किए जायें और झिझोड़ देने वाली, असरदार दलीलों से भरपूर वह्‌यों का एक लम्बा सिलसिला जारी रहे। दूसरी ओर ईमान वालों के लिए भी अभी तक केवल धर्म ही के बताने को काफ़ी समझा जाए, उन्हें अपने ईमानी गुणों को मज़बूत बनाने, सत्य पर जमे रहने और अल्लाह की राह में ज़ुल्म व सितम को सहन करने के आदेश दिए जायें और अच्छे नतीजों की शुभ-सूचनाओं के ज़रिए लगातार तसल्लियां दी जायें। फ़िर हिजरत का वक़्त क़रीब आ जाने पर उन्हें घर-बार, धन-दौलत, नाते-रिश्तेदार, सब कुछ छोड़ देने और इन सारी सांसारिक दिलचस्पियों को त्याग सकने के लिए तैयार किया जाये और इस उद्देश्य से अपने पालनहार पर पूरा भरोसा रखने की हिदायतें दी जायें। मदीना पहुंचने के बाद, एक ओर तो ईमान वालों के लिए धर्म के विस्तृत आदेशों का आना शुरू हो, उन्हें जीवन के विभिन्न भागों के बारे में शरअी ज़ाब्ते (धर्म-विधान) दिये जाने लगें, उनके भीतर सशस्त्र आक्रमणों का मुक़ाबला करने के लिए तन-मन-धन न्यौछावर कर देने की भावना पैदा कर दी जाये। दूसरी ओर मुनाफ़िक़ों की निन्दा व भर्त्सना की जाए, उन्हें सदाचरण अपनाने की चेतावनी दी जाये, उनके फ़ितनों से सच्चे मुसलमानों को ख़बरदार किया जाता रहे। तीसरी ओर मुश्रिकों, यहूदियों, ईसाइयों, यानी कि हर सम्प्रदाय के ग़ैर-मुस्लिमों में सत्य-धर्म का परिचय और उसका प्रचार-प्रसार किया जाता रहे और न केवल मदीना, मदीना के पास-पड़ोस और अरब के ग़ैर-मुस्लिमों को, बल्कि स्थिति के सुधरने और आह्‌वान के और अधिक मज़बूत हो जाने पर अरब से बाहर की जातियों को भी इस्लामी सन्देश पहुंचाना आरम्भ कर दिया जाए। फिर आख़िरी दिनों में, जबकि आह्‌वान कुफ़्र की शक्ति तोड़ कर पूरे देश में आधिपत्य प्राप्त कर

चुका था, ईमान वालों के लिए विस्तृत आदेश तेज़ी से उतार दिये जायें और आह्वान के पूर्णता तक पहुंचते-पहुंचते उन आदेशों को भी पूरा करके क़ुरआन को मुकम्मल कर दिया जाये।

जो व्यक्ति भी क़ुरआन मजीद का अध्ययन तनिक गहराई में डूब कर करेगा, वह साफ़ महसूस कर लेगा कि वह ठीक इसी तरह उतरा है। हदीस में यह आता है कि :–

'अल्लाह ने अपने रसूल की मृत्यु का समय क़रीब आने पर लगातार वह्य भेजी, यहां तक कि जिन दिनों उसने आप को वफ़ात (मृत्यु) दी, उन दिनों वह्य सबसे ज़्यादा उतरी'। –बुख़ारी

तो यह भी वास्तव में क़ुरआन के उतरने की इसी स्थिति और दशा का एक स्पष्टीकरण है। रसूल की मृत्यु का वक़्त क़रीब आने का अर्थ था, आह्वान का पूर्णता को पहुंच जाना और इस्लाम के आधिपत्य का स्थापित हो जाना और स्पष्ट है कि शरीअत के अधिकांश विस्तृत आदेशों के उतरने का स्वाभाविक व उचित अवसर वही था, जब इस्लाम का आधिपत्य सुदृढ़ हो चुका था और इस्लाम के अनुयायी उनका आज़ादी के साथ पालन कर सकने की पोज़ीशन में आ चुके थे। इसलिए इससे पहले स्वाभाविक रूप से ये आदेश रुके रहे और उस अवसर और समय के इन्तिज़ार में थे, फिर जब वह समय आ गया तो वे तेज़ी से उतरने लगे और अल्लाह के रसूल सल्ल० पर वह्य का तांता बंध गया।

क़ुरआन का संकलन

क़ुरआन जिस क्रम से उतरा था, उसी क्रम से संकलित नहीं किया गया। इसकी कुछ सूरतें तो ऐसी ज़रूर हैं, जो पूरी की पूरी

एक ही बार में उतरी थीं, इसलिए उनकी आयतें उतरने के क्रम के अनुसार ही संकलित हैं, लेकिन अधिकांश सूरतों का मामला इसके विपरीत है। एक साथ उतरने के बजाए इनके विभिन्न अंश, अलग-अलग समय में उतरे थे। सूरः का अगर एक टुकड़ा आज उतरा तो दूसरा महीनों बाद और तीसरा वर्षों बाद। आरम्भिक आयतें अगर मक्की हैं तो अन्तिम मदनी। सूरः के वे अंश, जो इस वक्त उसके आख़िरी हिस्से में नज़र आते हैं, अपने उतरने की दृष्टि से उन अंशों से पहले ही आये हैं जो शुरू ही में हैं। एक ही वक्त में कई-कई सूरतें उतर रही हैं। अभी जो आयतें उतरीं, उन्हें किसी सूरः में रखवाया जा रहा है और कुछ देर बाद कुछ दूसरी आयतें उतरीं, उन्हें किसी और सूरः का अंश बनाया जा रहा है। इस तरह एक ही साथ बहुत-सी सूरतें अपनी पूर्णता की ओर बढ़ रही हैं। एक सूरः जिस का उतरना महीनों पहले शुरू हुआ था, उसे अपनी पूर्णता तक पहुंचने के लिए अभी महीनों और वर्षों का इन्तिज़ार करना है। हज़रत उस्मान रज़ि० का बयान है कि :—

'अल्लाह के रसूल सल्ल० पर एक ही समय में कई-कई सूरतें उतरा करती थीं। जिस समय कोई चीज़ उतरती उस समय अपने किसी कातिब (लिखने वाले) को बुला कर आप फ़र्मा देते कि इन आयतों को फ़लां सूरः में रखो।' —तिर्मिज़ी

एक-एक सूरः के आंतरिक क्रम व संकलन ही की भांति इन सबके आपसी क्रम का भी यही हाल है। कुरआन जब संकलित किया गया, तो ऐसा नहीं हुआ कि जो सूरः पहले उतरी थी, उसे पहले, और जो बाद में उतरी थी, उसको उसके बाद और उससे मिला कर ही रख दिया हो और इस तरह पूरे कुरआन की सारी सूरतों को उतरने के क्रम के अनुसार संकलित कर दिया गया हो। ऐसा जिस मसलहत से भी किया गया हो उसकी व्याख्या तो आगे

आ रही है लेकिन अगर आप विचार करें तो मालूम होगा कि सूरतों को उनके उतरने के क्रम के अनुसार संकलित कर देने की कोई शक्ल पाई भी नहीं जा सकती, क्योंकि ये जिस तरीक़े से उतर रही थीं, (जिसका परिचय अभी आपको कराया जा चुका है), इस दृष्टि से तो कभी-कभी यह निर्णय करना सम्भव ही नहीं रहता कि उतरने की दृष्टि से कौन सी सूरत पहले की है और कौन सी बात की। चुनांचे अपने कुछ अंशों की दृष्टि से एक ही सूरः एक दूसरी सूरः से अगर पहले की है, तो कुछ दूसरे अंशों की दृष्टि से उससे पीछे की है, इसी तरह यह भी नहीं किया गया कि मक्की सूरतों को एक साथ एक सिलसिले में रख दिया हो और मदनी सूरतों को एक साथ संकलित कर दिया हो। अर्थात सूरतों के संकलन-क्रम में जिस तरह उतरने के क्रम का कोई ध्यान नहीं रखा गया है वैसे ही मक्की और मदनी होने को भी ध्यान में नहीं रखा गया है। और इन सब बातों से परे उन्हें किसी और ही ढंग पर संकलित कर दिया गया है।

उतरने के क्रम के ही अनुसार क़ुरआन को संकलित न किये जाने की मसलहत क्या थी? इसे बड़ी आसानी से मालूम किया जा सकेगा, अगर आप उतरने की दशा की उस बहस को अपने मन में फिर से ताज़ा कर लें, जो अभी ऊपर गुज़र चुकी है। जब यह क़ुरआन इन अर्थों में कोई किताब नहीं है कि इसमें एक विषय तय करके, इसके तमाम अंगों पर विशुद्ध वैज्ञानिक, कलात्मक और सैद्धान्तिक ढंग से क्रमवार वार्त्ता की गई हो, बल्कि इसकी हैसियत वास्तव में एक पथ-प्रदर्शक की ठीक मौक़े की अमली हिदायतों और एक आवाहक के वक्तव्यों की-सी है (जैसा कि आगे चलकर सविस्तार मालूम होगा) और यह उस क्रम से उतरा था, जिस क्रम से आह्वान का आरम्भ और विकास हुआ था तो स्पष्ट है कि जब

आह्वान अपने चरम-बिन्दु को पहुंच गया और उसी के साथ क़ुरआन का उतरना भी पूरा हो गया, तो अब वह्य के इस पूरे, सिलसिले को संकलित करने के लिये वह क्रम किसी तरह भी उचित नहीं हो सकता था, जो आह्वान की आये-दिन की ज़रूरतों की दृष्टि से अपनाया गया था। निश्चय ही इन खुदाई हिदायतों और पैग़म्बरों को अब एक स्थाई पुस्तक के रूप में लाने के लिये एक दूसरा ही क्रम चाहिये था, जिसमें आह्वान की पूर्णता के बाद की परिस्थितियों को दृष्टि में रखा गया हो। ऐसा करना उन लोगों की दृष्टि से भी ज़रूरी था, जो अभी तक ईमान नहीं लाये थे या जो आगे पैदा होने वाले और इस क़ुरआन के सम्बोधित जन बनने वाले थे।

जो लोग ईमान ला चुके थे, प्रारम्भ में उनकी हालत इस्लाम से अन्जान जैसी थी और इस्लाम के आवाहक सल्ल० को उन पर बिल्कुल शुरू से काम करना था, इसलिये उनके लिये हिदायत और हुक्म देने के सिलसिले में केवल यह देखा जाता था कि उनकी आन्तरिक और बाहरी परिस्थितियां क्या हैं? और वे किस समय, किस प्रकार की रहनुमाई के मुहताज हैं? लेकिन आह्वान के पूर्ण होने के बाद उनकी हैसियत बिलकुल ही बदल चुकी थी। अब वे क़ुरआन पर दिल व दिमाग़ की पूरी चाहत के साथ ईमान ला चुके थे, और ईमान लाकर उम्मते मुस्लिमा (मुस्लिमा समुदाय) बन चुके थे। वह उम्मते मुस्लिमा जो पैग़म्बर सल्ल० के बाद सच्चाई के पैग़ाम को लेकर आगे बढ़ी और उस मिशन के जारी रखने की ज़िम्मेदार बनाई गई, जिसे पैग़म्बर सल्ल० ने अरब की सीमाओं में तमाम व्यावहारिक और सैद्धान्तिक हैसियतों से पूर्ण करके उसके सुपुर्द किया था। इस बुनियादी परिवर्तन का खुला तक़ाज़ा था कि अब क़ुरआन उनके लिये, उतरने के क्रम के बजाए एक नये क्रम के

साथ संकलित हो, ऐसे क्रम के साथ, जिसमें धर्म-तथ्यों को समझाने, शरीअत के हुक्मों को बयान करने और धर्म- आत्मा को स्पष्ट कर देने के लिए श्रेष्ठ शैली और सुन्दर भावाभिव्यक्ति पाई जाती हो, ताकि वे अल्लाह के कलाम (वाणी) को अलग-अलग बेजोड़ और बिखरे हुये अंशों के रूप में देखने और उसकी शिक्षाओं को फैली हुई हिदायतों का योग पाने के बजाए व्यवस्थित रूप में उसे देख सकें।

रहे वे लोग, जो अभी तक किसी कारण ईमान नहीं लाये थे, या जिन तक यह पैग़ाम अभी पहुंचा ही नहीं था, या उन्होंने अभी जन्म ही नहीं लिया था और बाद में चल कर इस आह्वान के सम्बोधित-जन बनने वाले थे-तो उनकी दृष्टि से भी नये क्रम की उतनी ही अधिक आवश्यकता थी, जितनी कि उपरोक्त लोगों की दृष्टि से थी, बल्कि उससे भी अधिक। क्योंकि यह एक जानी मानी सच्चाई है कि किसी कलाम का उद्देश्य उस समय तक पूरी तरह नहीं खुल सकता, जब तक कि भाषा और भावाभिव्यक्ति में सौन्दर्य न हो और उसके विभिन्न भागों को क्रमागत ढंग से प्रस्तुत न किया गया हो और कोई सन्देह नहीं कि जब तक किसी वाणी का उद्देश्य पूरे तौर पर स्पष्ट न हो, उसे लोकप्रियता प्राप्त नहीं होती। अब अगर क़ुरआन क़ियामत तक के लिये अल्लाह का एकमात्र स्वीकृत 'हिदायतनामा' था और हर व्यक्ति और हर जाति के लिये उसे 'किताबे इलाही' मानना ज़रूरी था। (जैसाकि पिछले पृष्ठों में सविस्तार मालूम हो चुका है) तो सोचिये कि हक़ को मानने के लिए तैयार और समझदार लोगों के लिये भी इस क़ुरआन के वास्तविक अर्थों और गुणों का पूरे तौर से पा लेना कितना कठिन होता, अगर उसे उतरने के क्रम के अनुसार ही संकलित कर दिया जाता और लोगों पर हक़ की हुज्जत (सत्य की युक्ति) कैसे क़ायम

की जा सकती थी, अगर अल्लाह ... यह किताब उनके सामने तर्कपूर्ण क्रम और भाव-सौन्दर्य से परिपूर्ण एक क्रमागत, सन्तुलित और एक-दूसरे से सम्बन्धित वाणी के रूप में न आती?

इन कारणों से सच तो यह है कि अगर क़ुरआन को उतरने के क्रम के अनुसार ही संकलित कर दिया जाता तो वह 'वह्ये मुहम्मदी' और 'हिदायते इलाही' का एक 'रोज़नामचा' तो ज़रूर बन जाता और आज 'उतरने का इतिहास' जानने वालों के लिये वह बड़ी दिलचस्पी की चीज़ भी होती, मगर फिर ऐसा भी ज़रूर था कि 'हिदायत' चाहने वालों के लिये वह साक्षात हिदायत न होती और उसकी कितनी ही हक़ीक़तें गुम होकर रह जातीं।

संकलन का इतिहास

अब आइये, यह मालूम करें कि क़ुरआन का संकलन कब हुआ और किन हाथों हुआ? इस उद्देश्य से हमें जिन साधनों की ओर पलटना है, वे दो हैं :—

एक तो खुद क़ुरआन का अपना बयान,

दूसरे इतिहास की गवाही।

१. इस सम्बन्ध में क़ुरआन में जो कुछ फ़र्माया गया है, उसके शब्द ये हैं:—

'(हे मुहम्मद!) यक़ीन रखो, यह बात हमारे ज़िम्मे है कि इस क़ुरआन को जमा करें और उसे पढ़ कर सुना दें। पस, जब हम उसे पढ़ कर सुना दें तो उसी के अनुसार तुम भी पढ़ो'

—सूर: क़ियाम:

'जब हम पढ़ कर सुना दें' से तात्पर्य यह है कि हमारा वह्य का फ़रिश्ता (जिबरील) पढ़ कर तुम्हें सुना दे। ये शब्द अपने उद्देश्य

की दृष्टि से बिल्कुल स्पष्ट हैं और उनसे क़ुरआन के संकलन की समस्या का हर पहलू पूरी तरह रोशन हो जाता है, जैसे :–

(क) क़ुरआन के 'जमा' कर देने में, स्वयं नबी सल्ल० के अपने इरादे, कार्य, अधिकार और यत्न का कोई हाथ नहीं, बल्कि यह काम पूरी तरह से अल्लाह का अंजाम दिया हुआ है। नबी का कार्य और कर्तव्य इस सम्बन्ध में केवल यह था कि वह क़ुरआन को हज़रत जिबरील की ज़ुबान से सुनें और जिस तरह सुनें, उसी तरह ख़ुद भी पढ़ें।

(ख) क़ुरआन के इस 'जमा' कर देने के अर्थ में क्रम और संकलन की बात भी निश्चित रूप से शामिल है, अर्थात इस आयत से केवल यही नहीं मालूम होता कि पूरा क़ुरआन अल्लाह का जमा किया हुआ है, बल्कि यह भी साबित होता है कि इसका संकलन भी आसमानी है, क्योंकि स्पष्ट है कि हज़रत जिबरील ने हज़रत मुहम्मद सल्ल० को क़ुरआन की आयतों और सूरतों को किसी न किसी क्रम ही से सुनाया था, इसलिये 'तो उसी के अनुसार तुम भी पढ़ो' का अर्थ केवल यही नहीं हुआ कि हज़रत जिबरील जो कुछ तुम्हें पढ़कर सुनायें, वही तुम भी पढ़ो, बल्कि यह भी हुआ कि आयतों और सूरतों में वह जो क्रम रखें, वही क्रम तुम भी रखना, इसलिये इस आयत में 'क़ुरआन के जिस जमा कर देने का उल्लेख है, और जिसे अल्लाह ने अपनी ज़िम्मेदारी फ़र्माया है, वह क़ुरआन के सिर्फ़ शब्दों, आयतों और सूरतों का 'जमा कर देना' नहीं है, बल्कि ऐसा 'जमा कर देना' है, जिसमें क्रम व संकलन का अर्थ भी निश्चित रूप से शामिल है।

(ग) अल्लाह का यह 'जमा कर देना' और क्रम नबी की मौजूदगी ही में पूरा हो गया। ऐसा नहीं हुआ कि क़ुरआन नबी सल्ल० पर तो बिखरी आयतों और बेतरतीब सूरतों के रूप में

उतार दिया गया हो, और फिर जब आप दुनिया से तशरीफ़ ले जा चुके, तो खुदा का यह वायदा पूरा हुआ हो। क्योंकि ऐसी स्थिति में नबी सल्ल० से यह कहने का कोई अर्थ नहीं बाक़ी रह जाता कि, 'जब हम उसे पढ़ कर सुना दें, तो उसी के अनुसार तुम भी पढ़ना।'

इन सारी बातों के साथ-साथ एक और बात भी, अक़्ल और कथन दोनों की दृष्टि से हक़ीक़त है कि नबी सल्ल० ने अपनी नबूवत के अन्तिम क्षणों में क़ुरआन को, जिस हैसियत, रूप और क्रम के साथ उम्मत के हवाले किया, वह ठीक वही था, जिसके साथ वह उन्हें अल्लाह की ओर से दिया गया था। एक सामान्य बुद्धि कहती है कि जो किताब क़ियामत तक के लिये मानव-जीवन का 'हिदायतनामा' बनने वाली थी वह रसूल सल्ल० से रसूल के साथियों तक ठीक उसी 'हैसियत, रूप और क्रम' के साथ पहुंची होगी और अल्लाह का नबी सल्ल० को यह हुक्म देना कि :–

'हे पैग़म्बर! तुम्हारे रब (पालनहार) की ओर से जो कुछ तुम पर उतारा गया है, उसे (ज्यों का त्यों) लोगों तक पहुंचा दो और अगर तुमने ऐसा न किया तो उसकी पैग़म्बरी का हक़ अदा नहीं किया।' गवाही देता है कि निश्चय ही ऐसा ही हुआ, क्योंकि जब क़ुरआन के केवल शब्द और आयतें ही अल्लाह की ओर से नहीं हैं बल्कि उसका क्रम व संकलन भी उसी की ओर से है, जैसाकि पिछली आयत से मालूम हो चुका, तो यह क्रम व संकलन भी निश्चित रूप से 'जो कुछ तुम पर उतारा गया है' के भीतर शामिल क़रार पाया, जिसके बाद इस 'पहुंचा देने' के आदेश का पूरा पालन केवल इतनी बात से नहीं हो सकता था कि नबी सल्ल० क़ुरआन को उन्हीं शब्दों के साथ लोगों तक पहुंचा दें, जिनके साथ वह उतरा था, बल्कि उसके लिये यह भी ज़रूरी था

कि वह इसे उसी क्रम के साथ लोगों तक पहुंचायें, जिस क्रम के साथ उसे अपने पालनहार की ओर से पढ़ कर सुनाया गया है।

२. ऐतिहासिक कथनों से स्थिति स्पष्ट हो जाती है। तिर्मिज़ी शरीफ़ का यह कथन और हज़रत उस्मान का यह बयान अभी ऊपर गुज़र चुका है कि आप पर जो कुछ उतरता, आप उसी समय वह्य लिखने वालों को बुलाते और फ़र्माते कि इन आयतों को फ्लां सूर: में और फ्लां जगह पर रखो। इसके बाद अब इस सिलसिले के दो और कथन सुनिये :–

'क्योंकि हज़रत जिबरील, हज़रत मुहम्मद सल्ल० से पूरे रमज़ान हर रात आकर मिला करते थे। इस मुलाक़ात में हज़रत मुहम्मद सल्ल० उन्हें क़ुरआन सुनाया करते थे।'

—बुख़ारी

'हज़रत जिबरील, नबी सल्ल० को हर साल रमज़ान में एक बार क़ुरआन पढ़कर सुनाया करते थे और जिस साल आपने वफ़ात पायी, उस साल दो बार पढ़ कर सुनाया था।

—बुख़ारी

इन कथनों और बयानों से साबित होता है कि क़ुरआन के उतरने के सिलसिले में हज़रत जिबरील का काम क़ुरआन को पहुंचा देने पर ख़त्म नहीं हो जाता था, बल्कि वह अल्लाह की ओर से इस बात पर भी नियुक्त थे कि हर साल के रमज़ान में अब तक का उतरा हुआ कुल क़ुरआन हज़रत मुहम्मद सल्ल० को फिर से इकट्ठा सुना दिया करें और इसी तरह आप से सुन भी लिया करें, जब नबी सल्ल० के जीवन का आख़िरी रमज़ान आए, तो पूरे क़ुरआन को (क्योंकि उस समय वह क़रीब-क़रीब मुकम्मल हो चुका था) एक बार के बजाय दो बार पढ़ कर सुनायें और आप से

सुनें। इसलिए हज़रत जिबरील ने ऐसा ही किया। सोचिए कि आख़िरी रमज़ान में अल्लाह के फ़रिश्ते और उसके रसूल ने क़ुरआन को, जो दो-दो बार एक-दूसरे को पढ़कर सुनाया, उसमें कोई क्रम-आयतों का क्रम हो या सूरतों का क्रम-न रहा होगा? स्पष्ट है कि ऐसा विचार करना बिल्कुल ही ग़लत होगा और इसे निश्चित रूप से एक निश्चित क्रम के साथ ही पढ़ा और सुना गया था और कोई सन्देह नहीं कि यह वही क्रम था, जो अल्लाह के यहां पहले से निश्चित और उसके कथन 'वह क़ुरआन मजीद है, सुरक्षित पट्टिका में' के अनुसार सुरक्षित पट्टिका में मौजूद था। फिर बिल्कुल स्वाभाविक बात है कि यही क्रम आप ने उम्मत को भी सुनाया और इसी क्रम के साथ उम्मत उसे आज तक लगातार पढ़ती चली आ रही है। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि आज मुसलमान क़ुरआन को जिस क्रम से पढ़ रहे हैं, इसकी सनद मुसलसल हज़रत मुहम्मद सल्ल० तक पहुंचती है। आप ने यह क्रम अपने साथियों को सिखाया। उन्होंने अपने बाद के लोगों को यह अमानत सुपुर्द की और इस तरह यह सिलसिला बराबर चलता चला आ रहा है।

मतलब यह कि क़ुरआन का संकलन-क्रम पूरी तरह से अल्लाह की ओर से निर्धारित है। इस सिलसिले में जो कुछ हुआ अल्लाह ही की ओर से हुआ, यहां तक कि नबी सल्ल० का भी इसमें कोई दख़ल नहीं।

हाँ, इस जमा व क्रम के कुछ छोटे प्रबन्ध ऐसे भी हैं, जो पैग़म्बरे इस्लाम सल्ल० की मृत्यु के बाद ख़िलाफ़त-युग में किये गए। जहां तक क़ुरआन मजीद के क्रम व संकलन का, उसके लिखने-लिखाने का और उसको उसी क्रम के साथ लोगों को याद करा देने का प्रश्न है, वह तो निस्सन्देह नबी सल्ल० के समय में

ही पूरा हो चुका था और हाफ़िज़ों (क़ुरआन को ज़ुबानी याद करने वालों) के सीनों में ठीक वैसे ही संकलित हो चुका था, मगर ये सभी लिखे हुए भाग अलग-अलग टुकड़ों की शक्ल में थे और एक 'पुस्तक' के रूप में न थे। जब नबी सल्ल० की वफ़ात के बाद पहले ही साल बनू हुनैफ़ा नामक क़बीले से यमामा नामक स्थान पर मुसलमानों की लड़ाई हुई और उसमें क़ुरआन के बहुत से हाफ़िज़ शहीद हो गए, तो हज़रत उमर रज़ि० को तुरन्त यह विचार हुआ कि (यद्यपि अल्लाह ने क़ुरआन की रक्षा का वायदा कर रखा है, लेकिन हमारी ईमानी ज़िम्मेदारियों का तक़ाज़ा है कि अल्लाह के इस वायदे को पूरा करने का हम भी ज़रिया बनें, इसलिए) हमें क़ुरआन की पूरी हिफ़ाज़त का प्रबन्ध पूरी सावधानी के साथ कर लेना चाहिए। इस विचार के आते ही आप हज़रत अबूबक्र रज़ि० के पास आये, जो उस समय ख़लीफ़ा और रसूल के उत्तराधिकारी थे। पूरी स्थिति बताते हुए हज़रत उमर रज़ि० ने यह प्रस्ताव रखा कि अलग-अलग चीज़ों पर लिखे हुए क़ुरआन को एक जगह इकट्ठा करा दीजिये। पहले तो उन्होंने यह मजबूरी दिखाई कि जब नबी सल्ल० ने क़ुरआन को एक जगह जमा नहीं कराया, बल्कि उम्मत को सिर्फ़ याद करा देने और लिखा देने को ही काफ़ी समझा, तो मैं ऐसा क्यों करूँ? यह रसूल-प्रेम की हद तक बढ़ी हुई रसूल की पैरवी का प्रदर्शन था, वरन् इस प्रस्ताव में अल्लाह या उसके रसूल की मंशा से किसी प्रकार का भी विरोध या उल्लंघन न था। जब हज़रत उमर रज़ि० ने मसलहतों की ओर ध्यान पर ध्यान दिलाया तो जल्दी ही उन्होंने भी इस ज़रूरत को महसूस कर लिया और इसके लिए अमली क़दम उठा दिया। हज़रत ज़ैद इब्ने साबित रज़ि० को, जो प्यारे रसूल सल्ल० के लगातार साथ रहने के कारण वह्य लिखने वालों में सब से आगे थे,

बुलाया और उन्हें क़ुरआन को क्रमवार लिखने और एक प्रति में तैयार कर देने का हुक्म दिया। कुछ और प्रसिद्ध सहाबियों (प्यारे नबी सल्ल० के साथियों) के साथ हज़रत ज़ैद ने यह काम करना शुरू किया। हज़रत उमर रज़ि० ने मस्जिदे नबुवी के सामने खड़े होकर आम एलान कर दिया कि जिस व्यक्ति ने जितनी भी सूरतें लिख रखी हों, वह हमारे पास लाये। इस तरह हर व्यक्ति अपने लिखे हिस्सों को लेकर आया। हज़रत ज़ैद और उनके साथ दूसरे काम करने वाले सहाबी, यद्यपि सब के सब क़ुरआन याद किए हुए थे और फिर प्यारे रसूल सल्ल० के लिखाये हुए हिस्से उनके पास भी मौजूद थे, लेकिन सावधानी बरतने और किसी प्रकार का सन्देह न रहने देने के लिए उन्होंने दूसरी और आम गवाहियों का जुटाना भी ज़रूरी समझा। वे जो कुछ लिखा हुआ पाते, उस पर कम से कम दो विश्वासनीय गवाह लेते, कि यह जो कुछ लिखा गया है, हज़रत मुहम्मद सल्ल० के सामने लिखा गया है या नहीं? और फलां ने जो कुछ सुनाया है, उसने हज़रत मुहम्मद सल्ल० से उसी तरह सुना है या नहीं? जब गवाह गुज़र जाते तो उसे अपनी स्मृति और अपने लिखे अंश से मिलाकर मुक़ाबला करते, तब कहीं जाकर उसे लिखते। जब पूरा क़ुरआन लिखा जा चुका तो ख़लीफ़ा-ए-रसूल और अमीरुल् मोमिनीन (इस्लामी राज्य के शासनाध्यक्ष) होने की हैसियत से हज़रत अबूबक्र रज़ि० की हिफ़ाज़त में उसे रख दिया गया। उनके देहावसान के बाद दूसरे ख़लीफ़ा हज़रत उमर रज़ि० के पास क़ुरआन की यह प्रति रही। जब आप की भी मृत्यु हो गई, तो चूंकि आप ने अपना कोई उत्तराधिकारी नियुक्त नहीं किया था, इसलिए आप की सुपुत्री हज़रत हफ़्सा रज़ि० ने, जो उम्मुल मोमिनीन और प्यारे रसूल (सल्ल०) की धर्मपत्नी थीं, इसे अपनी अमानत में रखा। यह मानो

क़ुरआन मजीद की 'सरकारी प्रति' थी, इस लिए इसकी हैसियत उन दूसरी अगणित प्रतियों के मुक़ाबले में अधिक प्रमाणिकता रखती थी, जो दूसरे लोगों के पास थीं और जिन्हें उन्होंने अपने तौर पर तैयार कर रखा था।

इस तरह एक समय तक क़ुरआन पूरे का पूरा, एक प्रति की-सी हालत में जमा होकर ख़िलाफ़त-केन्द्र में मौजूद रहा, और आम लोगों का विश्वास अपनी स्मृति पर और अपने निजी लिखे अंशों पर रहा, यहां तक कि तीसरे ख़लीफ़ा हज़रत उस्मान रज़ि० का समय (सन २३ हि०) आया, जब कि इस्लाम अरब-सीमाओं से निकल कर पूरब में ईरान और पश्चिम में मिस्र तक फैल चुका था। और भारी संख्या में, जो लाखों से आगे बढ़ कर करोड़ों तक पहुंची जा रही थी, अजमी (ग़ैर अरबी) उसे अपना चुके थे और अपनाए चले जा रहे थे। ये लोग अरबी बिल्कुल नहीं जानते थे, इसलिए क़ुरआन-पाठ में काफ़ी ग़लतियां करनें लगे, यहां तक कि सीरिया और इराक़ के लोग भी इससे बचे न रहे। आर्मीनिया और आज़र-बाइजान की लड़ाई के मौक़े पर इन दोनों जगहों के लोग इकट्ठा हो गये तो हज़रत हुज़ैफ़ा रज़ि० को यह देख कर बड़ी परेशानी हुई कि क़ुरआन पढ़ने के ढंग और स्वर में ये लोग बड़ी भिन्नता प्रकट कर रहे हैं। लड़ाई से वापस आकर आप ने हज़रत उस्मान रज़ि० को इस स्थिति से अवगत कराया और उन का ध्यान इस ओर खींचा कि इस ख़राबी और फ़ितने का दरवाज़ा बन्द कर दीजिए, जो भविष्य में इस अन्तर से पैदा होता नज़र आ रहा है। वरन् कहीं ऐसा न हो कि जिस तरह पहले के लोगों ने आसमानी किताबों को तोड़-मरोड़ कर रख दिया, इस्लाम वाले भी क़ुरआन के बारे में विरोधाभास के शिकार हो जायें, हज़रत उस्मान रज़ि० ने समय की इस ज़रूरत को फ़ौरन महसूस किया और यह तय कर लेया कि असल क़ुरआन की नक़ल सही

क़ुरैशी-पाठ के मुताबिक़ तमाम इस्लामी प्राँतों में भेज दी जाए, ताकि उसी के अनुसार लोग क़ुरआन पढ़ें और आपस में कोई अन्तर न पैदा होने दें। इस आदेश से आपने हज़रत हफ़्सा रज़ि० के पास से वह संदूक़ मंगवाया, जिसमें हज़रत अबूबक्र (रजि०) की लिखाई हुई प्रति रखी हुई थी और हज़रत ज़ैद इब्न साबित रज़ि० को तीन और महान सहाबियों हज़रत अब्दुल्लाह इब्न ज़ुबैर रज़ि०, सईद इब्नुल् आस रज़ि० और अब्दुर्रहमान इब्न हारिस रज़ि० के साथ उचित आदेश देकर इस महान कार्य पर नियुक्त किया। जब कई नक़लें हो गईं, तो आप ने एक-एक नक़ल मिस्र, कूफ़ा, बसरा, मक्का, सीरिया, यमन और बहरैन के गवर्नरों के पास भिजवा दीं और लिख भेजा कि यह प्रति सही पाठ के अनुसार लिखवा दी गई है, लोगों को आदेश दिया जाए कि इसी प्रति के अनुसार क़ुरआन का पाठ करें। एक नक़ल मदीना में ख़ुद अपने पास रख ली थी, जिसका नाम 'इमाम' था। जिस समय आप शहीद किए गए थे, उस समय उसी प्रति का पाठ कर रहे थे। हज़रत उस्मान रज़ि० की नक़ल कराई हुई प्रतियां मक्का, मदीना, दमिश्क़ और फ़ास (मोरक्को) में अब तक मौजूद हैं।

'क़ुरआन के जमा' करने के सिलसिले में ये दो बाते हैं जो नबी सल्ल० की वफ़ात के बाद अन्जाम पाईं, मगर ज़ाहिर है कि क़ुरआन के क्रम व संकलन के अल्लाह की ओर से होने पर इन बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। बल्कि सच तो यह है कि इन बातों का सम्बन्ध क़ुरआन के जमा करने और संकलन करने से है ही नहीं। इन का सम्बन्ध अगर है तो क़ुरआन की हिफ़ाज़त से है और वास्तव में ये बातें भी अल्लाह के उस वायदे के पालन का एक हिस्सा थीं जो क़ुरआन की हिफ़ाज़त के बारे में किया गया था और उसी ग़ैबी प्रबन्ध की कड़ियां थीं, जो क़ुरआन के क़ियामत तक

सुरक्षित रखने के लिए वायदे के रूप में पाया जाता था। वैसे ये कारनामे हज़रत अबूबक्र और हज़रत उस्मान के मुबारक कारनामे भी हैं और इन भाग्यवान व्यक्तियों पर उनके पालनहार का यह सबसे बड़ा इनाम है कि उन्हें यह सौभाग्य प्राप्त हुआ।

सुरक्षित किताब

क़ुरआन मजीद की एक प्रमुख विशेषता यह भी है कि वह ज्यों का त्यों सुरक्षित है। इसका उल्लेख पिछले पृष्ठों में किया जा चुका है। लेकिन स्पष्ट है कि यह कोई मामूली महत्व की बात नहीं है, बल्कि महान और दूरगामी परिणाम पैदा करने वाली समस्या है और उसके इस महत्व का तक़ाज़ा है कि इस पर विस्तार से विचार किया जाये।

सुरक्षित होने का अर्थ

इस सम्बन्ध में सब से पहली ध्यान देने की बात तो यह है कि 'सुरक्षित' होने का मतलब समझ लिया जाए, यानी यह मालूम कर लिया जाए कि किसी किताबे इलाही के सुरक्षित बाक़ी रहने का अर्थ क्या होता है? डिक्शनरी, सामान्य बुद्धि और वह्य का मक़सद ये हैं वे चीज़ें, जिनसे इस सवाल का जवाब प्राप्त करना चाहिए। उन की ओर से इस प्रश्न का जो उत्तर मिलता है, वह यह है:—

किसी किताबे इलाही के सुरक्षित बाक़ी रहने का अर्थ यह कि:—

(क) इसके शब्द ठीक वही हैं जो अल्लाह की ओर से उतारे गए थे।

(ख) इन शब्दों का आपसी क्रम व सम्बन्ध, और इन से बने

हुए वाक्यों और उपवाक्यों का सिलसिला भी ठीक-ठीक वही है, जिसे इस किताब के लाने वाले पैग़म्बर ने अल्लाह की ओर से पेश किया था।

(ग) इनमें से कोई एक शब्द भी नष्ट नहीं हुआ है, न इस तरह कि वह बिल्कुल ग़ायब हो गया हो, न इस तरह कि उसको हटा कर उसकी जगह कोई और शब्द रख दिया गया हो या उसका किसी और भाषा में अनुवाद कर दिया गया हो।

(घ) इसमें कोई शब्द बढ़ाया नहीं गया है, यहां तक कि उस के लाने वाले पैग़म्बर का अपना भी कोई शब्द उसके भीतर आ दाख़िल नहीं हुआ है।

इन बातों में से अगर कोई एक बात भी हो जाए, तो फिर किताब को सही अर्थों में सुरक्षित नहीं कहा जा सकेगा, क्योंकि ऐसी स्थिति में उस पर से विश्वास उठ जाता है कि इस किताब से उसके उतारने वाले की मंशा अब भी पूरी की पूरी समझी और मालूम की जा सकती है। किसी वाक्य में शब्दों की कमी-बेशी तो दूर की बात, अगर उन का क्रम भी बदल दिया जाए तो, यद्यपि शब्द सारे के सारे वही रहेंगे, जो असल में थे, मगर अर्थ कहीं से कहीं पहुंच जाएगा।

क़ुरआन की 'सुरक्षा' का प्रश्न

जिस तरह नबूवत के किसी दावेदार के बारे में सब से पहला ज़रूरी प्रश्न यह पैदा होता है कि वह नबूवत के अपने दावे में सच्चा है या नहीं और यह कि उसके सच्चे होने की दलीलें क्या हैं। ऐसे ही किसी सच्चे नबी के नाम से पेश की जाने वाली किताब के बारे में भी यह प्रश्न पैदा होता है कि क्या यह वही किताब है जो

उस पर उतरी थी? और अगर वही किताब है तो वह पूरी तरह सुरक्षित पाई ज़ा रही है या नहीं? क्योंकि हो सकता है एक व्यक्ति सही अर्थों में अल्लाह का रसूल तो हो, लेकिन उसने जो किताब अल्लाह की ओर से पेश की थी, वह गुम हो चुकी हो और आज उस के नाम से कोई और लेख प्रस्तुत किया जा रहा हो, या नाम की हद तक तो वह वही किताब हो, जो उस रसूल ने अपने अनुयायियों को दी थी, लेकिन बाद में उसके भीतर कमी-बेशी हो चुकी हो, या उसके शब्दों और विषयों के क्रम में उलट-फेर हो गया हो, या असल किताब तो किसी और ही भाषा में उतरी थी और अब किसी और भाषा में केवल उसका अनुवाद मात्र रह गया हो। स्पष्ट है, इस तरह की कोई बात भी अगर पेश आ चुकी हो, तो ऐसी दशा में उस किताब को सुरक्षित न कहा जा सकेगा और जो किताब 'सुरक्षित' न रह गई हो, उससे वह मक़सद कभी पूरा न हो सकेगा, जिस के लिए कोई आसमानी किताब उतारी जाती है। इसके बाद उसकी हैसियत भी वह बाक़ी नहीं रह सकती, जिस की कि घट-बढ़ या तबदीली से पहले वह मालिक थी और अब उसके 'पालन योग्य' होना का उसका अधिकार इस हद तक ख़त्म हो जाएगा, जिस हद तक कि उसमें घट-बढ़ या तबदीली हो चुकी है।

इस लिए किसी भी किताबे इलाही के बारे में इन्सान को यह खोज करनी ही चाहिए कि वह अपनी असल हालत में बाक़ी रह गई है या नहीं? ख़ास तौर से क़ुरआन मजीद के बारे में इस प्रश्न का उठना और इस मामले की खोज करना तो बिल्कुल ही ज़रूरी है, क्योंकि वह दूसरी आसमानी किताबों के मुक़ाबले में एक अलग हैसियत की भी दावेदार है, यानी वह सामान्य पुस्तकों जैसी एक पुस्तक नहीं है, बल्कि ऐसी किताब है, जिसने तमाम पुरानी

किताबों को मन्सूख कर दिया है, जिसके बाद अब और कोई किताब न उतरेगी, जो दुनिया के लिए पालन करने योग्य है और जो अब क़ियामत तक के लिए अल्लाह का एक मात्र प्रिय व स्वीकृत 'हिदायत नामा' है—उस के इन दावों की दृष्टि से उसकी 'सुरक्षा' की समस्या केवल एक सैद्धांतिक और वैज्ञानिक समस्या, नहीं रह जाती, बल्कि मानव-जीवन की महत्वपूर्ण व्यावहारिक समस्या बन जाती है, दुनिया में उसकी कामियाबी और आख़िरत में उसकी निजात, दोनों उससे सम्बन्धित हो जाती हैं और उसकी यह विशेष हैसियत तक़ाज़ा करती है कि जब तक इस धरती पर मनुष्य मौजूद है, वह भी पूर्ण रूप से सुरक्षित रहे, वरना मनुष्य 'हिदायत' कहां से हासिल कर सकेगा? इसलिए क़ुरआन अगर अपने दावों में सच्चा है, तो ज़रूरी है उस का हाल वह कभी न हो, जो पिछली किताबों का हो चुका है, बल्कि वह निश्चिंत रूप से ज्यों का त्यों बाक़ी रहे। इस तरह कहना चाहिए कि उस का सुरक्षित रहना उस की सत्यता का एक अनिवार्य प्रमाण भी है। इन सारी बातों की मौजूदगी में इस प्रश्न के न उठने का कोई कारण नहीं कि क़ुरआन क्या पूरी तरह सुरक्षित है? और क्या इस समय जो किताब क़ुरआन के नाम से दुनिया के सामने मौजूद है, वह अपनी भाषा, अपने शब्दों, अपने वाक्यों, अपने क्रम और अपने पाठ, मतलब यह कि हर पहलू से ठीक वही किताबे इलाही है, जिसे हज़रत मुहम्मद सल्ल० ने पेश फ़र्माया था?

क़ुरआन की सुरक्षा का व्यावहारिक प्रबंध

इस प्रश्न का उत्तर मालूम करने से पहले यह जान लेना मुनासिब और ज़रूरी होगा कि साहिबे क़ुरआन सल्ल० ने क़ुरआन

को सुरक्षित करने और रखने का क्या प्रबन्ध किया था? इतिहास और हदीसों से इस प्रबन्ध का जो विवेचन मिलता है, वह संक्षेप में इस प्रकार है:—

(१) दरबारे रिसालत में नियमित रूप से वही लिखने वाले नियुक्त थे, जो सब से अधिक योग्य और प्रसिद्ध सहाबियों (नबी सल्ल० के साथियों) में से लिए गए थे। मक्की युग में हज़रत अबूबक्र रज़ि०' हज़रत उस्मान ग़नी रज़ि० और हज़रत अली रज़ि० और मदीना आने के बाद इन लोगों के अलावा हज़रत ज़ुबैर इब्नुल अव्वाम, उबई इब्न काब, हन्ज़ला इब्नुर रबीअ, ज़ैद इब्न साबित, उबई इब्न फ़ातिमा, अब्दुल्लाह इब्न अरक़म, शुरहबील इब्न हसना, अब्दुल्लाह इब्न रवाहा, अमीर मुआविया, ख़ालिद इब्न सईद और अब्बान इब्न सईद रज़ि० आदि चौबीस और कुछ कथनों के अनुसार बयालीस सहाबा इस काम पर लगा दिए गए थे, जिन को क़ुरआन ने 'बा-इज़्ज़त' और भले लिखने वाले फ़र्माया है। जब कोई वह्य आती, आप तुरन्त किसी लिखने वाले से फ़र्माते कि इन आयतों को फ्लां सूरः में फ्लां आयत के पास लिख लो। (तिर्मिज़ी का यह कथन ऊपर लिखा जा चुका है कि जब, 'अल्लाह के रसूल सल्ल० पर कोई चीज़ उतरती, तो आप अपने किसी वह्य लिखने वाले को बुला कर फ़र्माते कि इसे फ्लां सूरः में लिख लो') लिखने वाला जब उस वही को लिख लेता, तो आप उस से यह लिखा हुआ पढ़वा कर सुनते और उसमें लिखने की कोई ग़लती पाते, तो दुरुस्त कर देते, जैसा कि वह्य के लिखने वालों के सरदार हज़रत ज़ैद इब्न साबित का बयान है, 'जब मैं लिख चुकता, आप फ़र्माते, पढ़ो। मैं उसे पढ़ कर सुनाता। अगर उसमें कोई कमी होती, तो आप उसे ठीक करा देते।' (मजूमउज़्ज़वाइद, भाग १, पृ० ६०) इसके बाद उसे प्रसारित

करने का आदेश दे दिया जाता। वह्य का लिखने वाला लिखने के बाद बाहर आता और आम मुसलमानों को यह नया उतरा हुआ अंश पढ़कर सुना देता और लिखना जानने वाले उसे ख़ुद भी लिख लेते, बाक़ी लोग सिर्फ़ ज़ुबानी याद कर लेने को ही काफ़ी समझते। इस तरह एक ओर तो क़ुरआन की लिखावट 'सरकारी' निगरानी में होती रहती थी, दूसरी ओर बहुत से सहाबा इसे निजी तौर पर भी लिख लिया करते थे। हज़रत मुआज़ इब्न जबल, हज़रत उबई इब्न काब, हज़रत ज़ैद इब्न साबित और हज़रत अबूज़ैद रज़ि० आदि ने तो पूरा क़ुरआन लिख लिया था।

(बुख़ारी, फ़ज़ाइलुल् क़ुरआन)

लिखने के लिए बारीक झिल्ली, कमाया हुआ पतला चमड़ा, खजूर की शाखाओं का निचला भाग, सफ़ेद पत्थर की पतली-पतली स्लेटें और ऊँट के कन्धों की चौड़ी हड्डियां आदि चीज़ें इस्तेमाल की जाती थीं।

(२) इस आशंका से कि शायद अल्लाह के रसूल की अपनी बातें, जो दीन ही से सम्बन्धित होती थीं, कलामे इलाही से गड-मड न हो जायें, आप ने अपने साथियों को हुक्म दे दिया था कि, 'क़ुरआन के अलावा और जो कुछ तुम मेरे मुंह से सुनते रहते हो, उसे न लिखा करो।' —सुनन दारमी, पृ० ४६

(३) एक ओर तो हर वह शब्द जो अल्लाह की ओर से उतरता, ध्यानपूर्वक जल्दी-जल्दी लिख लिया जाता था, दूसरी ओर नबी सल्ल० उसे खुद तो याद कर ही लिया करते थे, अपने साथियों को भी याद करा दिया करते थे और फिर उनसे बार-बार पढ़वा कर सुनते भी रहते थे और खुद भी पढ़कर उन्हें सुनाया करते थे, ताकि कोई शब्द ग़लत न याद हो जाए। जो साथी वक़्त पर मौजूद न रहते, उन्हें बाद में सिखा और याद करा दिया जाता।

फिर सामूहिक रूप से भी क़ुरआन के पढ़ने और पढ़ाने का ख़ास प्रबन्ध था। मक्का में हज़रत अरक़म मख़्ज़ूमी रज़ि० के घर को आप ने 'तिलावत ख़ाना' (पढ़ने का घर) मुक़र्रर फ़र्माया था। वहीं मुसलमानों के साथ तशरीफ़ ले जाया करते और क़ुरआन पढ़ा करते थे। (यह ऐतिहासिक और पवित्र मकान मक्का में अब भी मौजूद है) जब आप मदीना तशरीफ़ लाए, तो यहां क़ुरआन के पढ़ने-पढ़ाने वालों की एक ख़ास जमाअत तैयार हो गई, जो इस्लामी इतिहास में 'असहाबे सुफ़्फ़ा' के नाम से मशहूर है। ये वे ग़रीब लोग थे, जो मक्का से अपना सब कुछ छोड़कर आए थे और यहां उनका अपना कोई निजी ठिकाना न था, मस्जिदे नबवी के सुफ़्फ़े (चबूतरे) पर गुज़र किया करते थे। उनकी संख्या अच्छी-भली थी, आमतौर से अस्सी के लगभग। ये लोग अमलन अपना पूरा जीवन 'दीन' ही की सेवा में लगाए हुए थे। एक ओर तो उन का काम यह था कि जब मदीना से बाहर का कोई क़बीला इस्लाम लाता तो उसे दीन और क़ुरआन सिखाने जाया करते, दूसरी ओर इस सेवा में लगे हुए थे कि जिस समय कोई वह्य आती, नबी सल्ल० उन्हें याद करा देते और वे अच्छी तरह याद कर लेने के बाद मदीने की गलियों में फैल जाते और दूसरों को सुना कर याद करा देते। इस सारे प्रबन्ध का फ़ल स्वाभाविक रूप से यह हुआ कि हज़रत मुहम्मद सल्ल० अपने आप तो क़ुरआन के पूरे हाफ़िज़ (याद करने वाले) थे ही , बहुत से साथी भी आप के साथ-साथ पूरे का पूरा क़ुरआन अपने सीनों में सुरक्षित किये हुए थे। ये ऐसे लोग थे जिन को रसूल सल्ल० के दूसरे साथियों के मुक़ाबले में आप का सत्संग अधिक प्राप्त था। जहां तक बाक़ी साथियों का ताल्लुक़ है, इनमें का भी हर व्यक्ति क़ुरआन का थोड़ा बहुत भाग ज़रूर ही याद कर लेता और याद रखता था और कोई

एक व्यक्ति भी ऐसा न था, जिसने कुछ भी याद न किया हो, क्योंकि ऐसा सम्भव ही न था। इस्लाम और ईमान के साथ यह बात किसी तरह जुड़ ही नहीं सकती कि आदमी को क़ुरआन सिरे से याद ही न हो।

इस सिलसिले में यह बात ख़ास तौर से याद रखने की है कि अरबवासी स्मरण-शक्ति में अपना कोई उदाहरण भी नहीं रखते थे। उनकी तेज़ स्मरण-शक्ति की घटनायें इतनी चौंका देने वाली हैं कि आज जब हम उन्हें किताबों में पढ़ते हैं, तो उन पर कहानियों का धोखा होता है। वे लम्बे-लम्बे क़सीदे (प्रशस्ति-पत्र) एकाध बार सुन कर ज़ुबानी याद कर लेते, उन के लिए अपने घोड़ों और ऊँटों की वंशावली का याद रखना मामूली बात थी। वास्तव में यह बात भी अल्लाह के परोक्ष प्रबन्धों की एक कड़ी थी कि उसने क़ुरआन की सुरक्षा के लिए पहले मरहले में, ऐसी जाति को चुना, जिस की स्मरण-शक्ति का कोई उदाहरण संसार में नहीं मिलता।

क़ुरआन के सुरक्षित होने की दलीलें

इन आरम्भिक जानकारियों के बाद आइये अब इस समस्या को देखें कि क्या मौजूदा क़ुरआन ठीक वही क़ुरआन है, जो हज़रत मुहम्मद सल्ल० पर उतरा था और जिसे आप ने उम्मत के हवाले किया था?

इस उद्देश्य के लिये अगर आप इस समस्या से जुड़ी बातों पर नज़र डालें तो पायेंगे कि वे दो प्रकार की हैं—एक तो वे जो बुद्धि-संगत दलील की हैसियत रखती हैं, इसलिये वे क़ुरआन मजीद की सुरक्षा का प्रमाण, मुस्लिम और ग़ैर-मुस्लिम सभी के लिए बन सकती हैं। दूसरे वे, जो स्वयं क़ुरआनी बयानों से ली गई

हैं, इसलिए वे सिर्फ़ इस्लाम वालों ही के लिए हुज्जत(युक्ति)क़रार पा सकती हैं।

(क) बुद्धिसंगत दलीलें

पहले बुद्धिसंगत दलीलों को लीजिये और यह देखिये कि विशुद्ध ज्ञानात्मक, ऐतिहासिक और तार्किक खोजों की रोशनी में क़ुरआन सुरक्षित साबित होता है या नहीं?

स्पष्ट है कि किसी हिदायत, किसी क़ानून या किसी किताब को सुरक्षित रखने की दो ही शक्लें हुआ करती हैं:— (१) हिफ़्ज़ (ज़ुबानी याद कर लेना) और (२) किताबत (लिख लेना) इस लिये क़ुरआन मजीद की सुरक्षा का हाल मालूम करने का अर्थ वास्तव में यह देखना है कि क्या इसे सन्तोषजनक सीमा तक ज़ुबानी याद रखा गया? और अगर यह नहीं तो क्या इसे पूरी सावधानी के साथ लिख लिया गया? और फिर यह ज़ुबानी याद रखने या लिखते रहने का सिलसिला, अब तक पूरी सावधानी के साथ चला आ रहा है?

(१) क़ुरआन मजीद की सुरक्षा की पहली शक्ल के बारे में वास्तविक स्थिति जानने के लिए इन तथ्यों पर नज़र डालिए :—

(क) जिस समय हज़रत मुहम्मद सल्ल० दुनिया से तशरीफ़ ले गए हैं, आप के मानने वालों और क़ुरआन पर ईमान लाने वालों की एक भारी संख्या मौजूद थी, जो हज़ारों से आगे बढ़ कर लाखों तक पहुंची हुई थी।

(ख) क़ुरआन मजीद के पढ़ने-पढ़ाने और याद रखने के बारे में आप ने अपने इन अनुयायियों को हिदायतें दी थीं और बराबर प्रेरणा दी गई, जिनके उल्लेखों से हदीस की किताबें भरी पड़ी हैं, जैसे, 'क़ुरआन पढ़ा करो, क्योंकि क़ियामत के दिन वह अपने पढ़ने

वालों के लिए सिफ़ारिशी बन कर आयेगा।' (मुस्लिम, फ़ज़ाइलुल क़ुरआन) 'तुम में सब से अच्छा वह है जो क़ुरआन को सीखे और सिखाये।' (बुख़ारी, फ़ज़ाइलुल क़ुरआन) 'क़ुरआन की याद को ताज़ा करते रहो।' (बुख़ारी)

इसी तरह ख़ुद क़ुरआन मजीद के अन्दर भी इस तरह की हिदायतें और प्रलोभन मौजूद हैं।

दूसरी ओर उन लोगों के सामने क़ुरआन के बताये हुए वे डरावे और तबाहियां भी थीं, जिनके यहूदी और ईसाई, अपनी किताबों में रद्दोबदल कर डालने और उनके कुछ हिस्सों को भुला बैठने के नतीजे में अधिकारी बने थे। मानो इन जातियों की ग़फ़लत, कोताही का हाल और अंजाम बयान करके ख़ुद उन्हें भी ख़बरदार किया जा चुका था कि अगर तुम ने क़ुरआन मजीद का कोई हिस्सा भुला दिया, या उसके शब्दों-वाक्यों में किसी प्रकार की तबदीली आ जाने दी, तो अल्लाह का न्याय-नियम तुम्हारे साथ भी वही बर्ताव करेगा, जो इन यहूदियों और ईसाइयों के साथ कुछ तो कर चुका है और अभी बहुत कुछ क़ियामत के दिन करने वाला है। नबी सल्ल० ने भी उन्हें इस तरह की चौंका देने वाली चेतावनियां दे रखी थीं कि, 'जो कोई क़ुरआन पढ़ता है और फिर उसे भूल जाता है, वह क़ियामत के दिन कोढ़ी बन कर उठेगा।'

(अबूदाऊद)

(ग) नबूवत-काल में सांसारिक और धार्मिक दोनों ही प्रकार की इज़्ज़त, बड़ाई और सफलता की असल-कसौटी क़ुरआन-ज्ञान थी। जिसे क़ुरआन मजीद का कितना ही ज़्यादा ज्ञान होता, उस का पद उतना ही उच्च होता। इन्तज़ामी ज़रूरतों के मौक़ों पर छोटे बड़े हर मामले में मार्गदर्शन के लिए सबसे पहले यही देखा जाता कि कौन क़ुरआन ज़्यादा जानता है? क्योंकि क़ुरआन ही

राज्य और समाज का बुनियादी क़ानून था। इसलिए स्वाभाविक रूप से किसी भी पद के लिए चुनाव करते समय यह देखना ज़रूरी था कि इस 'क़ानून' को कौन ज़्यादा जानता है। हज़रत अबूहुरैरा रज़ि० का बयान है कि हज़रत मुहम्मद सल्ल० ने एक मुहिम के लिए एक बड़ी टुकड़ी तैयार की और इस का कमांडर एक ऐसे व्यक्ति को नियुक्त किया, जो सब से कम उम्र था। इस चुनाव का कारण यह था कि खोज के नतीजें में वह सब से ज़्यादा क़ुरआन याद कर लेने वाला साबित हुआ था। (तिर्मिज़ी) जहां तक ख़ालिस दीनी बड़ाई का ताल्लुक़ है, इसका अन्दाज़ा लगाने के लिए क़ेवल एक घटना का उल्लेख काफ़ी होगा। उहुद के शहीदों को जब, उनकी अधिकता के कारण, एक-एक क़ब्र के अन्दर दो-दो की तायदाद में दफ़न किया जाने लगा, तो हज़रत मुहम्मद सल्ल० ने पूछंना शुरू किया, 'इनमें से कौन क़ुरआन ज़्यादा जानता था?' और जब बता दिया जाता तो ऐसे व्यक्ति को क़ब्र में क़िबले की ओर आगे रखते।'

—बुख़ारी, किताबुल जनायज़

(घ) हज़रत मुहम्मद सल्ल० के साथियों की मज़हब से दिलचस्पी और प्रेम, जुनून की हद को पहुंचा हुआ था। उन्हें अपने रसूल सल्ल० से बहुत लगाव और अपनी किताब से ग़ैर मामूली ताल्लुक़ था। क़ुरआन मजीद की तिलावत (पाठ) उनका सबसे प्यारा कार्य, और उनकी आत्मा का मनपसन्द भोजन था। उनमें कोई ऐसा न था जो किसी दिन भी इस तिलावत से बिल्कुल महरूम रह गया हो, यहां तक कि कितने ही ऐसे थे जो हर दिन पूरा क़ुरआन पढ़ कर चैन पाते थे। उदाहरण के तौर पर हज़रत उस्मान रज़ि० हजरत अब्दुल्लाह इब्न अम्र रज़ि और हज़रत तमीम दारी रज़ि० आदि के हालात पढ़िये। नबूवत काल के इतिहास में हम कोई एक घटना भी ऐसी नहीं पाते, जिस से मालूम

होता हो कि किसी साथी को आपने क़ुरआन कम पढ़ने पर चेतावनी दी हो, जबकि ऐसी घटनायें बहुत मिलती हैं, जिन में आप लोगों को क़ुरआन पढ़ने में सन्तुलन से काम लेने की हिदायत देते नज़र आते हैं, जैसे, हज़रत अब्दुल्लाह इब्न अम्र रज़ि० के बारे में जब आप को मालूम हुआ कि वह हर रात पूरा-पूरा क़ुरआन पढ़ा करते हैं, तो उन्हें इससे रोक दिया और फ़र्माया कि, 'क़ुरआन पूरे एक महीने में ख़त्म किया करो।' उन्होंने कहा, 'मैं इससे ज़्यादा की ताक़त रखता हूं।' तो फ़र्माया, 'अच्छा, तो फिर सात रातों में ख़त्म किया करो, इससे अधिक न पढ़ो।'

—बुख़ारी

ऐसे ही हज़रत क़ैस इब्न सअसआ ने जब आप सल्ल० से पूछा कि, 'क़ुरआन कितने दिनों में ख़त्म किया करूँ?' तो फ़र्माया, 'पन्द्रह दिनों में', कहा कि,' हुज़ूर! मैं इस से कम मुद्दत में आसमानी से पढ़ ले सकता हूं।' फ़र्माया, 'अच्छा तो, सप्ताह भर में समाप्त किया करो।' फिर कहा कि, 'इस से भी कम समय में पढ़ सकता हूं', तो फ़र्माया, 'बस, इससे कम समय में नहीं।'

—कंज़ुलउम्माल

(ङ) पूरा क़ुरआन २३ साल की लम्बी मुद्दत में थोड़ा-थोड़ा करके उतरा था, जिस का अर्थ यह था कि रसूल सल्ल० के साथियों को क़ुरआन याद कर लेने के लिए कई-कई वर्ष मिले थे, जबकि पूरा क़ुरआन याद कर लेने के लिए दो-ढाई वर्ष बिल्कुल काफ़ी हो जाते हैं, जैसा कि हज़ारों-लाखों तजुर्बे और घटनायें गवाही दे सकती हैं।

(च) आप के साथियों की स्मरण-शक्ति 'लाइफ़ आफ़ मुहम्मद' के लेखक सर विलियम म्यूर जैसे प्राच्यविद्या, विशारद

के शब्दों में भी 'चरम सीमा' को पहुंची हुई थी, क्योंकि ये लोग उस अरब जाति से सम्बन्ध रखते थे, जो इस गुण में अपना कोई उदाहरण नहीं रखते थे।

इन तमाम बातों को, जो इतिहास की बिल्कुल स्पष्ट और इन्कार न करने योग्य सच्चाइयाँ हैं, नज़र में रखिये, फिर विचार कीजिए कि इन का फल अनुभव और बुद्धि के लिए क्या निकल सकता था? क्या इस के सिवा कुछ और कि अल्लाह के रसूल सल्ल० के लाखों साथियों में ऐसा तो कोई न था, जिसे क़ुरआन थोड़ा बहुत भी याद न हो और ऐसे अनगिनत थे, जिन्हें क़ुरआन मजीद एक-एक शब्द कर के पूरा याद हो? फिर इसके ख़िलाफ़ कुछ होना सम्भव भी नहीं था, क्योंकि ऐसी प्रबल मनोवैज्ञानिक प्रेरणाओं और प्राकृतिक कारणों के मौजूद होते हुए यह बात व्यावहारिक रूप से सम्भव ही नहीं हो सकती, इसलिए इस पूरी स्थिति को देख कर बुद्धि किसी हिचक के बिना ही यह निर्णय कर सकती है कि सहाबियों में पूरे क़ुरआन के हाफ़िज़ों (याद रखने वालों) की एक भारी संख्या निश्चित रूप से मौजूद रही होगी और इतिहास की गवाही यह है कि निस्सन्देह मौजूद थी। जब मदीना से बाहर का कोई क़बीला इस्लाम लाता था, तो उसे क़ुरआन की शिक्षा देने के लिए हज़रत मुहम्मद सल्ल० क़ुरआन के हाफ़िज़ सहाबियों को भेजा करते थे, और कभी-कभी उनकी तायदाद काफ़ी बड़ी हुआ करती थी, जैसे अबुल बरा नामक व्यक्ति नज्द से मदीना आया और अपने क्षेत्र के लोगों को क़ुरआन सिखाने के लिए उसने आप से 'शिक्षकों' को भेजने का आवेदन किया, तो आप ने इस काम के लिए जिन हाफ़िज़ों की नियुक्ति की, उनकी संख्या सत्तर थी।

—ज़ादुलमआद

विचार कीजिये, जब एक-एक क्षेत्र को भेजे जाने वाले

हाफ़िज़ों की संख्या सत्तर-सत्तर हुआ करती थी, तो क़ुरआन के कुल हाफ़िज़ कितनी बड़ी तायदाद में रहे होंगे। हज़रत मुहम्मद सल्ल० की मृत्यु के एक वर्ष बाद ही यमामा की जो ख़ूनी लड़ाई हुई थी, उसमें १२ या १४ सौ मुसलमान शहीद हो गये थे, इन शहीद होने वालों में ७०० क़ुरआन के हाफ़िज़ थे।

—मजमउज़्ज़वाइद

सहाबियों के ज़माने में क़ुरआन के हाफ़िज़ों की यह अधिकता बाद के मुसलमानों में न केवल बराबर बनी रही, बल्कि उन की तायदाद के बढ़ते रहने के साथ-साथ बढ़ती चली गई और फिर कोई ज़माना ऐसा न आया जब मुस्लिम उम्मत के अन्दर क़ुरआन के अनगिनत हाफ़िज़ मौजूद न पाये गये हों। इस्लामी इतिहास की यह एक ऐसी सच्चाई है, जिस के बारे में किसी सन्देह व संकोच की कोई गुन्जाइश बाक़ी नहीं रह सकती। आज़ भी, जब कि आम मुसलमानों की धार्मिक रुचि कम रही है और वह उस ज़माने के मुक़ाबले में दसवां-बीसवां हिस्सा भी नहीं रह गई है, आप शायद ही कोई मुस्लिम बस्ती ऐसी पायेंगे जिस में दो-एक क़ुरआन के हाफ़िज़ न हों।

(२) अब 'सुरक्षा' के दूसरे तरीक़े 'लिख कर सुरक्षा' को लीजिये और इस सिलसिले में पहले, निम्न सच्चाइयों पर नज़र डालिये :

(क) जिन दिनों क़ुरआन उतरा है, उस समय ऐसा तो ज़रूर था कि अरब में लिखने का चलन कम और उस की सुविधाओं का अभाव था, मगर ऐसा बिल्कुल न था कि लिखने-पढ़ने का वहां कोई वजूद ही न रहा हो। अरब-इतिहास का अध्ययन कीजिये तो इस बात की पक्की गवाहियां मिलेंगी और बहुत मिलेंगी कि अरब

में, ख़ास कर मक्का में लिखने-पढ़ने का चलन बड़ी हद तक मौजूद था, वहां लोग समझौतों को लिख कर दस्तावेज़ों की शक्ल में रखा करते थे और कविताओं और क़सीदों को लिख लिया करते थे। जैसे, मक्का में कुरैश की पूरी बिरादरी ने हज़रत मुहम्मद सल्ल० के, आप के परिवार बनी हाशिम के, और मुसलमानों के विरुद्ध पूर्ण बहिष्कार का जो समझौता किया था, उसे लिख कर काबा के भीतर लटका दिया गया था।

—इब्ने हिशाम, भाग १

इसी तरह अरबी के मशहूर क़सीदे 'अल-मुअल्लक़ातुस्सबअ,' जिनको हर अरबी भाषी जानता है, उन्हें 'मुअल्लक़ात' कहे जाने का कारण ही यह है कि वे लिख कर काबा के दरवाज़ें पर लटका दिए गए थे।

-अरबी साहित्य का इतिहास

बद्र की लड़ाई में कुरैश के जो ७० व्यक्ति क़ैद किए गए थे, उन में से कई आदमियों की रिहाई के लिए फ़िदिया (प्रतिदान) इस बात को क़रार दिया गया था कि एक-एक व्यक्ति दस-दस बच्चों को ख़ूब अच्छी तरह लिखना-पढ़ना सिखाये।

—तबक़ाते इब्ने सअद

ये और इस प्रकार की बहुत सी घटनायें इस सच्चाई का खुला सुबूत हैं कि मक्का में लिखने-पढ़ने का ख़ूब चलन था। उस समय के अरबी साहित्य का अवलोकन कीजिये तो उसमें लिखने और उस से सम्बन्धित बातों का उल्लेख बहुतायत से मिलेगा। ख़ुद क़ुरआन मजीद में क़लम, मिदाद (रोशनाई), किताब, लिखाई, लिखने वाला, इमला (आलेख), इक्तिताब (लिख लेना) मस्तूर (लिखा हुआ), सफर: (लिखने वाले), सहीफ़ा (लिखे हुये पन्ने), लौह (तख़्ती), रक़्क़ (भिल्ली से बनाये हुये काग़ज़) और क़िरतास

(काग़ज़)—आदि शब्दों का उल्लेख इस बात की खुली दलील है कि क़ुरआन उतरने के समय में अरब लिखने-पढ़ने की कला को भली-भांति जानते थे।

(ख) क़ुरआन मजीद ने लिखने की कला को एक बड़ी नेमत और एक बड़ी देन कहा है, जिस का अन्दाज़ा इस बात से होता है कि उसने अपनी सब से पहली वह्य में, जो सिर्फ़ पांच छोटी-छोटी आयतों तक सीमित थी, अल्लाह की जिन खुली और बड़ी नेमतों का नाम लिया है, उन में से एक 'क़लम के ज़रिए सिखाने' की बात भी है—

'क़लम के ज़रिए सिखाया, सिखाया इन्सान को वह कुछ जो वह नहीं जानता था।' —सूर:अलक़

(ग) जहां तक कारोबार के अहम मामलों का ताल्लुक़ है, क़ुरआन मजीद ने उन में से कुछ के सिलसिले में इस बात पर बड़ा ज़ोर दिया है कि उन्हें लिख लिया जाया करे। जैसे, 'जब तुम किसी निश्चित समय के लिए आपस में क़र्ज़ का मामला करो, तो उसे लिख लिया करो और तुम्हारे बीच कोई लिखने वाला इन्साफ़ के साथ (सम्बन्धित दस्तावेज़ को) लिख दे। लिखने वाले को लिख देने से, जैसा कि अल्लाह ने उसे ज्ञान दिया हो, इन्कार न करना चाहिये। पस उसे चाहिये कि लिख दे मामला चाहे छोटा हो या बड़ा, समय की व्याख्या के साथ उसे लिख लेने को बोझ न महसूस करो।' -सूर:बक़र:, २८२

इन तीनों सच्चाइयों की मौजूदगी क़ुरआन मजीद की क्रमागत और पूर्ण लिखाई को; दलीलों के आधार पर, जिस तरह निश्चित कर देती है, उस की व्याख्या बिल्कुल बे-ज़रूरत होगी। जब

तमाम साथी लिखने-पढ़ने की कला न जानते थे, जब पहले दिन ही से क़ुरआन मजीद ने इस कला को अल्लाह की एक बड़ी नेमत और ज्ञान-प्राप्ति का ज़रिया बना रखा था, जब कारोबारी मामलों को भी लिपिबद्ध कर लेने की हिदायतें दी गई थीं, तो मानव-बुद्धि में यह बात कैसे आ सकती है कि आप और आप के साथियों ने क़ुरआन मजीद को लिपिबद्ध कर लेने की ओर ध्यान न दिया होगा! हालांकि उनके नज़दीक यह क़ुरआन सब से अहम और क़ीमती चीज़ थी जिस पर सारे इन्सानों की कामयाबी-दुनिया व आख़िरत की कामयाबी टिकी थी और इस सच्चाई से वे भी बे-ख़बर न थे कि 'लिख लेना' ही किसी कलाम को सुरक्षित रखने का वास्तविक और सन्तोषजनक साधन है।

बुद्धि और विवेक का यह तक़ाज़ा सामने आ जाने के बाद अब इतिहास की घटनाओं की ये गवाहियां सुनिये :-

(क) जितना-जितना क़ुरआन उतरता जाता था, हज़रत मुहम्मद सल्ल० उसे लिखाते जाते थे। इस उद्देश्य के लिए वह्य लिखने वाले नियुक्त थे। जब कोई वह्य उतरती, तो आप किसी लिखने वाले को बुलाते और फ़रमाते कि इसे लिख लो (तिर्मिज़ी) प्रमुख कातिब हज़रत ज़ैद इब्न साबित रज़ि० कहते हैं कि जब मैं आप के हुक्म के मुताबिक़ लिख चुकता, तो आप पढ़वा कर सुनते और अगर लिखने में ग़लती पाते तो उसे ठीक करा देते।

—मजमउज़्ज़वाइद

(ख) क़ुरआन मजीद में ख़ुद क़ुरैश के काफ़िरों का यह बयान मौजूद है कि वह बराबर लिखा जाता रहा है : 'और ये लोग कहते हैं कि यह क़ुरआन तो पिछलों की नक़लें हैं, जिन्हें इस व्यक्ति ने लिख लिया है और सुबह-शाम (कुछ लोगों की ओर से) बोल कर इसे लिखाया जाता रहता है। (अल-फ़ुर्क़ान)

(ग) नबी सल्ल० ने अपने साथियों को यह हिदायत कर रखी थी कि, 'मेरी ज़ुबान से (सुन कर) क़ुरआन के सिवा और कुछ न लिखा करो।' (दारमी)

(घ) हिजरत से काफ़ी दिनों पहले की घटना है कि जब हज़रत उमर रज़ि० जो अभी इस्लाम नहीं लाए थे, अपनी बहन के घर पहुंचे, तो हज़रत ख़ब्बाब रज़ि० उन्हें और उनके पति हज़रत सईद इब्न ज़ैद रज़ि० को सूरः ताहा पढ़ा रहे थे। उन की आहट पाकर हज़रत ख़ब्बाब रज़ि० एक ओर को हट गए और वह सहीफ़ा, (लिखा अंश) जिस से हज़रत ख़ब्बाब, इन दोनों को सूरः ताहा पढ़ा रहे थे, हज़रत उमर की बहन ने अपनी रान के नीचे छिपा लिया। जब उन्होंने इन से कहा कि मुझे वह सहीफ़ा दिखाओ, जिसे मैंने अभी तुम्हें पढ़ते सुना है, तो उन्होंने उत्तर दिया कि इसे पाकी की हालत ही में छुआ जा सकता है। यह सुन कर हज़रत उमर ने स्नान किया, तब उन्होंने सहीफ़ा उनके हाथों में दिया और हज़रत उमर ने उसे पढ़ा।

—सीरते इब्ने हिशाम, भाग प्रथम, पृ० २६७

(ङ) रसूल के साथियों रज़ि० का बयान है कि हम अल्लाह के रसूल सल्ल० के पास बैठ कर क़ुरआन नक़ल किया करते थे। हज़रत अब्दुल्लाह इब्न अम्र रज़ि० कहते हैं कि, 'इस दौरान कि हम हुज़ूर सल्ल० के इर्दगिर्द घेरा बांध कर (क़ुरआन) लिख रहे थे।' —दारमी, पृ० ४९

हज़रत अली रज़ि० ने एक बार एक सवाल के जवाब में इस बात की व्याख्या की कि हमारे पास अल्लाह की किताब के, और जो कुछ इस सहीफ़ा में है, इस के सिवा और कोई लिखी हुई चीज़ नहीं। —बुख़ारी

हज़रत ज़ैद इब्न साबित रज़ि० का बयान है कि, 'हम नबी सल्ल० की ख़िदमत में बैठकर (चमड़े आदि के) विभिन्न टुकड़ों से (आप की हिदायत के मुताबिक़) क़ुरआन लिखा करते थे।'

—बुख़ारी, फ़ज़ाइलुलक़ुरआन

ये सारी बातें इस का खुला फ़ैसला है कि क़ुरआन मजीद की किताबत (लिखाई) का दो ओर से प्रबन्ध था—एक सरकार की ओर से, दूसरा आम लोगों की ओर से। एक ओर तो अल्लाह के रसूल सल्ल० के निजी प्रबन्ध में वह पूरी सावधानी के साथ लिखा जाता रहता था, दूसरी ओर आम मुसलमानों को इस की पूरी हिदायत थी कि उन में जो लिखना जानते हैं, वे ख़ुद भी इसे लिखते और नक़ल करते जायें और इस हिदायत पर पूरा-पूरा अमल भी हो रहा था। जब मक्का में भी, जहां मुसलमान बड़ी परेशानी और मजबूरी की हालत में और बहुत थोड़ी तायदाद में थे, लोग क़ुरआन मजीद को लिखते रहते थे (जैसा कि हज़रत उमर रज़ि० की उपरोक्त घटना से जान पड़ता है) तो मदनी युग के बारे में कुछ कहने की कोई ज़रूरत ही नहीं रह जाती, जहां मुसलमान अपनी तायदाद और अपने साधनों की दृष्टि से उन्नति करके कहीं से कहीं जा पहुंचे थे। अभी आप ने सुना कि हज़रत मुहम्मद सल्ल० के गिर्द लोग घेरा बांध-बांध कर बैठते थे और अपने लिए प्रतियां तैयार करते थे। इस तरह कितने ही सहाबी ऐसे थे जिन्होंने हुज़ूर सल्ल० के जीवन ही में पूरे क़ुरआन को उसकी आख़िरी तरतीब के साथ लिख लिया था, हज़रत अबुद्दर्दा, हज़रत मुआज़ इब्न जबल, हज़रत ज़ैद इब्न साबित रजि० और हज़रत अबूज़ैद रज़ि० के बारे में तो हज़रत अनस रज़ि० ने सविस्तार फ़र्माया है कि इन लोगों ने नबी सल्ल० के समय में पूरा क़ुरआन 'जमा' कर लिया था। (बुख़ारी, फ़ज़ाइलुल् क़ुरआन) ऐसे साथी कुल कितने रहे होंगे,

जिन्हें यह सौभाग्य प्राप्त हुआ था? इसका अन्दाज़ा सिर्फ़ इसी बात से लगा लीजिये कि रसूल सल्ल० की वफ़ात के एक साल बाद ही यमामा की लड़ाई जो हुई थी, उसमें क़ुरआन के जमा करने वाले सत्तर लोग शहीद हुए थे।

—मिर्क़ात, बुख़ारी-हाशिया के हवाले से

तात्पर्य यह कि इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि क़ुरआन मजीद नबूवत-काल ही में पूरे का पूरा लिखा जा चुका था और रसूल सल्ल० की वफ़ात के वक़्त उसकी प्रतियां भारी संख्या में फैल चुकी थीं। ऐसा हरगिज़ न था कि मुस्लिम समाज लिखे हुए क़ुरआन से ख़ाली रहा हो। हज़रत मुहम्मद सल्ल० ने आख़िरी हज के वक्तव्य में जब यह फ़र्माया कि, 'लोगो! वह समय आने से पहले, जबकि ज्ञान (क़ुरआन) उठा लिया जाये, उसे प्राप्त करो,' तो एक देहाती ने कहा, 'ज्ञान किस तरह उठा लिया जाएगा, हालांकि मसाहिफ़ (अर्थात लिखे हुए क़ुरआन) हमारे भीतर मौजूद हैं?

—मुस्नद अहमद, भाग ५, पृ० २६६

यह इस बात की खुली गवाही है कि हज़रत मुहम्मद सल्ल० के जीवन ही में क़ुरआन की प्रतियां आमतौर से तैयार हो चुकी थीं और देहाती अरबों तक पहुंच चुकी थीं।

अन्त में एक और सच्चाई पर नज़र डाल लीजिए—

क़ुरआन मजीद ने अपने को जगह-जगह 'किताब' कहा है। जैसे, 'यह किताबे इलाही है, इसमें कोई सन्देह नहीं।' इसी तरह 'सुहुफ़' (एक वचन सहीफ़ा) भी फ़र्माया है, जैसे, 'अल्लाह की ओर से आया हुआ एक रसूल जो पाक सहीफ़े पढ़ता है,' फिर उसने अपने बारे में यह भी कहा है कि, 'इसे सिर्फ़ पाक लोग ही छूते (या छू सकते) हैं' और यह कि, 'वह बुज़ुर्ग और भले लिखने वालों के हाथों में है।'

ये कथन इस बात का खुला एलान हैं कि खुद क़ुरआन मजीद ने अपनी हैसियत एक ऐसे हिदायतनामे की बताई है, जो मूल रूप से लिखित भी है। इससे मालूम हुआ कि अल्लाह के रसूल सल्ल० और आप के साथियों ने क़ुरआन को लिखते रहने का जो प्रबन्ध किया था, वह केवल धार्मिक लगाव ही का फल नहीं था, बल्कि इस बात का भी फल था कि क़ुरआन के पूर्ण होने की हैसियत ने उनसे इस काम का तक़ाज़ा किया था और वह पूरी तरह 'मौजूद' क़रार नहीं पा सकता था, अगर लिख न लिया गया होता।

क़ुरआन की लिखाई के बारे में ये सविस्तार विवेचन आप के सामने हैं। उन्हें देखने के बाद, विश्वास भी करना पड़ेगा कि नबूवत-काल में क़ुरआन मजीद की सुरक्षा लिखित रूप में भी हुई, बड़े स्तर पर भी हुई और पूर्ण रूप से हुई।

अब रहा बाद के ज़मानों का सवाल, तो यह शायद ऐसा सवाल होगा, जिसे सिर्फ़ बे-ज़रूरत ही उठाया जा सकता है। शुरू के चार ख़लीफ़ों ने इस अमानत की सुरक्षा और इसके प्रचार का जो प्रबन्ध किया था, वह 'क़ुरआन का संकलन' की बहस में आप पढ़ ही चुके हैं। हज़रत उस्मान रज़ि० ने हज़रत मुहम्मद सल्ल० के ख़ास कातिब हज़रत ज़ैद इब्न साबित के नेतृत्व में क़ुरआन मजीद की नक़लें तैयार कराने और समूचे मुस्लिम क्षेत्रों में उन्हें भिजवाने का जो प्रबन्ध किया था, वह भी आप के सामने आ चुका है। फिर इस सच्चाई के बताने की ज़रूरत नहीं कि बाद के ज़माने इस्लाम की तेज़ रफ़्तार तरक़्क़ी के ज़माने थे उस का राज्य और उसके साधन हर दिन फैलते ही जा रहे थे और उसके क्षेत्र में लिखाई का ज्ञान रखने वालों की तायदाद हज़ारों और लाखों से भी ऊपर पहुंचती जा रही थी और सब से आख़िरी बात यह कि पूरे

इस्लामी राज्य का, जो शुरू के चार खलीफ़ों ही के समय से अरब से आगे बढ़कर इराक़, सीरिया और ईरान आदि देशों तक फैल चुका था,.विधान व क़ानून बुनियादी तौर पर यही क़ुरआन था। यह पूरी स्थिति अपने आप जो कुछ कह रही है, उसके सुनने से निश्चय ही बहरे कान भी अन-सुने नहीं रह सकते। अल्लामा इब्न जज़्म का अन्दाज़ा यह है कि दूसरे ख़लीफ़ा हज़रत उमर रजि० के ज़माने में मुसलमानों के पास क़ुरआन मजीद की एक लाख प्रतियों से कम न रही होंगी। (किताबुल् फ़स्ल भाग २, पृ० ७८) ज़ाहिर बात है कि जिस क़ुरआन का महत्व यह था कि उसी पर आख़िरत की कामियाबी और राज्य का पूरा प्रशासन टिका था, कोई भी मुस्लिम आबादी उसकी प्रतियों से ख़ाली कैसे रह सकती थी? मुख्य रूप से उस महान राज्य के असंख्य हाकिमों और क़ाज़ियों के पास तो क़ुरआन मजीद की प्रतियों का मौजूद न रहना कोई अर्थ ही नहीं रखता। क्योंकि उनके पद-कर्त्तव्यों को निभाने के लिए इस किताब का उन के पास मौजूद होना बहरहाल ज़रूरी था। अनुमान तो यह कहता है कि स्वयं सरकार की ओर से उन्हें ये प्रतियां जुटाई जाती रही होंगी। चुनांचे ऐतिहासिक तौर पर यह एक मान्य तथ्य है कि शुरू के चारों ख़लीफ़ा अपने गर्वनरों और क़ाज़ियों को जो हिदायतें भेजा करते थे, वे भी लिखित रूप में हुआ करती थीं। फिर यह कैसे माना जा सकता है कि जो चीज़ पूरी मिल्लत (समुदाय) के लिए असल हिदायत और पूरे राज्य के लिए बुनियादी क़ानून की हैसियत रखती थी, उसके बारे में वे इस तरह की व्यवस्था की ज़रूरत न महसूस करते रहे होंगे!

इस पूरी वार्ता से यह सच्चाई दोपहर के सूर्य की तरह रोशन हो जाती है कि क़ुरआन मजीद की सुरक्षा दोनों तरीक़ों से की गई और पूरे प्रबन्ध से, बहुत ही सन्तोषजनक रूप से की गई। इसे

बड़े पैमाने पर, अपनी असल शक्ल में शब्दशः याद भी रखा गया और लिखा भी गया और नबूवत-काल के बाद ये दोनों सिलसिले, न केवल यह कि क़ायम रहे, बल्कि बड़ी तेज़ी से तरक़्क़ी भी करते चले गए। इस तरह अल्लाह की यह किताब पूरे सिलसिले के साथ नक़ल होती हुई हम तक ठीक उसी हालत में पहुंचती चली आई है, जिसमें कि वह अल्लाह की तरफ़ से अपने रसूल को दी गई थी। जो व्यक्ति भी सच्चाई को स्वीकार करना जानता होगा, वह यह माने बिना नहीं रह सकता कि दुनिया की कोई दूसरी पुस्तक ऐसी नहीं, जिसे अपनी सुरक्षा के लिए शुरू से आज तक ऐसे सन्तोषजनक प्रबन्ध हाथ आये हों, जो अगणित सीनों में भी और असंख्य लेखन-पत्रों में भी बराबर चिन्हित चली आती हो। चुनांचे जिन ग़ैर-मुस्लिम शोधकों ने इस समस्या का खुले मस्तिष्क के साथ अवलोकन किया है, उन्हें भी यह बात माननी पड़ी है। जर्मन विद्वान वान हेम का यह कहना कि 'हम क़ुरआन को मुहम्मद का कलाम उसी तरह मानते हैं, जैसाकि मुसलमान इसे ख़ुदा का कलाम मानते हैं,' इसी वास्तविकता की एक खुली गवाही है।

(ख) क़ुरआनी दलीलें

क़ुरआन मजीद के वे बयान, जिन से स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है कि वह सदा सुरक्षित रहने वाली किताब है, इस प्रकार हैं:–

(१) हज़रत मुहम्मद सल्ल० को सम्बोधित करके कहा गया है कि:–

'हम तुम्हें (यह क़ुरआन) इस तरह पढ़ा देंगे कि (वह तुम्हें) पूरी तरह याद हो जायेगा और तुम उसे न भूलोगे।'

—सूरः आला

अल्लाह के इस कथन की पृष्ठभूमि यह है कि नबी सल्ल० की रिसालत की अहम और भारी ज़िम्मेदारियों का बहुत ज़्यादा एहसास रहा करता। हर समय इस चिन्ता में घुलते रहते थे कि कहीं उस पैग़ाम और हिदायत का कोई हिस्सा अल्लाह के बन्दों तक पहुंचने से रह न जाये, जो उसकी ओर से मेरे ऊपर इसी लिए उतर रहा है कि उसे ज्यों का त्यों उन तक पहुंचा दूं। यही एहसास था, जिस के तहत आप क़ुरआनी वह्य के उतरते वक़्त उसे याद कर लेने के मामले में बड़ी बेचैनी और जल्दी करते थे। इस पर अल्लाह ने आप को तसल्ली देते हुए फ़र्माया कि परेशान होने और जल्दबाज़ी से काम लेने की कोई ज़रूरत नहीं, इत्मीनान रखो, यह हमारी वह्य और हमारी शिक्षा है। जिस तरह हम इसे तुम तक सन्तोषप्रद ढंग से पहुंचा रहे हैं, वैसे ही तुम्हें अच्छी तरह याद भी करा देंगे और इस का कोई शब्द भी तुम्हारी याददाश्त से छूट न पायेगा।

यही इत्मीनान एक दूसरे मौक़े पर एक और ढंग से दिलाया गया है। कहा जाता है कि:—

'हे पैग़म्बर! इस (क़ुरआन) को हासिल करते वक़्त अपनी ज़ुबान को (इस उद्देश्य से, बेचैनी के साथ) हरकत न देने लगो कि इसे जल्दी से सीख लो। यक़ीन रखो, इस का इकट्ठा कर देना और इसे पढ़ (कर तुम्हें सुना) देना हमारे ज़िम्मे है।'

—सूरः क़ियामः

इस कलामे इलाही ने इस बात को और अधिक स्पष्ट और निश्चित बना दिया कि अल्लाह के रसूल सल्ल० के ज्ञान और स्मृति से क़ुरआन का कोई एक शब्द भी बाहर न रह सकेगा, क्योंकि इस बात का अल्लाह की ओर से सिर्फ़ वायदा ही नहीं है

(जैसा कि पिछली आयत से मालूम हुआ था) बल्कि इसे उसने अपनी ज़िम्मेदारी भी क़रार दे रखा है। जो कोई अल्लाह पर ईमान रखता है, वह यह भी जानता है कि अगर अल्लाह किसी बात को अपनी ज़िम्मेदारी क़रार दे ले, तो इसका क्या अर्थ होता है? इसका अर्थ यह होता है कि सूर्य का पश्चिम से निकलना तो सम्भव है, मगर यह किसी तरह सम्भव नहीं कि अल्लाह अपनी ज़िम्मेदारी पूरी न करे, इस लिए उस का यह फ़र्माना कि 'इस क़ुरआन का इकट्ठा कर देना और उसे पढ़कर सुना देना हमारे ज़िम्मे है'—इस बात का पक्का सबूत है कि नबी सल्ल० के सीने में क़ुरआन मजीद पूरी तरह सुरक्षित रहा और ठीक उसी शक्ल में सुरक्षित रहा, जिसमें कि वह आप को दिया गया था।

(२) क़ुरआन मजीद की विशेषता उसके उतारने वाले ने यह बताई है:—

यक़ीनन यह एक किताबे अज़ीज़ है। बातिल न इसके आगे से इसमें राह पा सकता है, न इसके पीछे से।

—सूरः हाम्मीम सज्दा

अज़ीज़ के मानी हैं, 'वह, जिसके ख़िलाफ़ कोई शक्ति सफल न हो सके—इस लिए क़ुरआन के 'किताबे अज़ीज़' होने का अर्थ यह हुआ कि इसके वजूद को कभी कोई हानि नहीं हो सकती, इस के सम्मान को कोई आघात नहीं पहुंच सकता और इस का रूप और इस की हैसियत किसी भी परिवर्तन की पहुंच से परे है। आगे इसी 'अज़ीज़ियत' की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि, बातिल (असत्य) उसके भीतर घुस आने की राह न पा सकेगा।' किसी किताबे इलाही के भीतर असत्य के घुस आने का अर्थ यह है कि इसमें कोई इन्सानी कलाम मिल जाये, या इसके शब्द और

वाक्य उलट-पलट हो जायें, या इसका कोई भाग नष्ट हो जाये। क्योंकि इनमें से कोई एक बात भी घटित होने पर किताब अपनी उतरी हुई हालत में बाक़ी नहीं रहती, और वह 'मुकम्मल' और 'शुद्ध सच्चाई' नहीं पुकारी जा सकती। इसलिए क़ुरआन मजीद के भीतर असत्य की राह न पा सकने का अर्थ स्पष्ट रूप से यह हुआ कि इस किताब में न कभी कोई कमी-बेशी हो सकती है, न इसके शब्द आगे-पीछे हो सकते हैं और न इसकी हालत में किसी तरह की और कोई तबदीली पैदा हो सकती है।

क़ुरआन मजीद के बारे में यह सर्वशक्तिमान ख़ुदा का वायदा है, ऐसा वायदा, जिसमें 'फ़र्मान की-सी शान पाई जाती है, यह इस बात का एलान है कि क़ुरआन मजीद में कभी कोई मिलावट न हो सकेगी, कभी इसका कोई अंश नष्ट न हो सकेगा, कभी इसके शब्द आगे-पीछे न हो सकेंगे, जब कि पिछली दोनों आयतों में यह वायदा या फ़र्मान सिर्फ़ रसूल की ज़ात ही की हद तक महदूद था।

(३) एक और जगह फ़र्माया गया है कि:–

'निस्सन्देह यह ज़िक्र (अर्थात क़ुरआन) हमीं ने उतारा है और हम निश्चय ही इसे सुरक्षित रखेंगे।' —सूरः हिज्र ९

इन शब्दों की व्याख्या की कोई ज़रूरत नहीं, इन से, उपरोक्त समस्या का अंग-अंग आइने की तरह चमक उठता है। ये इस बात को एक खुली हक़ीक़त बता रहे हैं कि इस क़ुरआन का उतारने वाला ख़ुदा इसे हर तरह की तबदीली और कमी-बेशी से सदैव सुरक्षित रखेगा। यह उसका वायदा और फ़ैसला है, जिस के बाद इस बात की कोई सम्भावना नहीं रहती कि किसी समय भी क़ुरआन का हाल वह हो सकता है, जो पिछली किताबों का होता रहा है। तात्पर्य यह है कि यह आयत क़ुरआन के पूरी तरह

सुरक्षित बाक़ी रहने के मामले में 'दृढ़ वचन' की हैसियत रखती है और इसे हमेशा के लिए किसी वार्ता या किसी छान-बीन की ज़रूरत से उच्च समझती है।

(४) अन्त में यह दलील भी देख लीजिए:—

क़ुरआन मजीद ने अपनी जो विशेष हैसियत बताई है और अपने को जिन प्रमुख गुणों का स्वामी ठहराया है, ख़ुद उन का तक़ाज़ा—स्पष्ट और अनिवार्य तक़ाज़ा क्या है? जो किताब अल्लाह का आख़िरी हिदायतनामा है, जो पिछली सारी आसमानी किताबों को मंसूख़ क़रार दे चुकी है और जिसकी पैरवी पर अब पूरी मानवता का कल्याण और मुक्ति निर्भर है। क्या आम अक़्ल इसके बारे में इस बात को मानने योग्य कह सकती है कि वह भी कभी घट-बढ़ की भेंट चढ़ सकती है, उसे भी कभी भुला दिया जा सकता है? उसके भीतर भी कोई परिवर्तन हो सकता है? नहीं और निश्चय ही नहीं, क्योंकि यह बात उसकी हैसियत, उसके 'पद' और उसके 'उतरने के उद्देश्य' से किसी तरह मेल नहीं खाती। और ऐसा विचार करना वास्तव में मानव-जाति के रचयिता पर अत्याचार और अन्याय का आरोप लगाना है कि एक ओर तो वह इस किताब को अपना एक मात्र स्वीकृति 'हिदायतनामा' ठहरा रहा है और उसी की पैरवी को अपनी रहमत और मग़्फ़िरत (माफ़ी) की शर्त क़रार दे रहा है। दूसरी ओर अपने बन्दों के लिए उसे असल हालत में सुरक्षित रखने का उसने कोई विशेष प्रबन्ध भी नहीं किया, मानो वह अपने बन्दों को इस 'अपराध' में सज़ा देगा कि उन्होंने उसके एक ख़ास-क़ानून और हिदायतनामे की पैरवी नहीं की, हालांकि वह ख़ास क़ानून और हिदायतनामा अपनी सही शक्ल में दुनिया में बाक़ी ही नहीं रह गया था।

क़ुरआन मजीद के सुरक्षित होने की यह दलील, यद्यपि उस के किसी खुले कथन पर आधारित नहीं है, लेकिन इसके बहुत से उन कथनों का, जिन में उसने अपनी प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख किया है, बिल्कुल खुला हुआ तक़ाज़ा है। इसलिए उसके महत्व से भी इन्कार नहीं किया जा सकता।

वर्णन-शैली

अछूती वर्णन-शैली

कुरआन मजीद, न केवल यह कि एक ऊंचे दर्जे का बेहतरीन कलाम है, जिसकी मिसाल इन्सानी कलाम में कहीं नहीं मिलती, बल्कि इसका अन्दाज़े बयान (वर्णन शैली) भी बिल्कुल अछूता है जो किसी दूसरी किताब में पाया ही नहीं जा सकता। इसका अर्थ यह है कि जब तक कोई व्यक्ति इससे और इसकी वजहों और मसलहतों को जान न ले, उस पर कुरआन मजीद का अर्थ भी पूरी तरह नहीं खुल सकता, उसकी नज़रें उसके गुणों तक पहुंच जायें, यह तो दूर की बात है। इसलिए कुरआन मजीद से परिचित होने के लिए ज़रूरी है कि उसकी वर्णन-शैली की इस विशेष स्थिति को भी, कम से कम, बुनियादी तौर से अवश्य ही समझ लिया जाए।

सामान्य पुस्तकों और किताबों की शैली तो यह होती है कि उनमें एक निर्धारित विषय पर जानकारियों, विचारों और दलीलों को क्रमवार लिख दिया जाता है। पहले स्पष्ट रूप से केन्द्रीय विषय निश्चित किया जाता है, फिर उसके विभिन्न पहलुओं और उसकी समस्याओं में से एक-एक को लेकर उस पर विस्तृत बहस हुआ करती है और जब तक एक-एक पहलू पर पूरी बहस नहीं हो जाती, दूसरे का नाम नहीं आने पाता, लेकिन कुरआन मजीद में न तो इस तरह विषय का निर्धारण है, न ही कोई स्पष्ट शीर्षक, न कहीं अध्यायों का विभाजन दीख पड़ता है, न विभिन्न समस्याओं

पर की जाने वाली वार्ताओं में कोई क्रम। हालांकि सच तो यह है कि इसमें सब कुछ है। पूरे क़ुरआन का एक व्यापक और हर सूरः का एक केन्द्रीय विषय भी है, हर विषय के अनेकों पहलू भी हैं। और फिर इन सब पर अलग-अलग वार्ताएं भी हैं और इन वार्ताओं में आपसी अटूट संबंध भी है—लेकिन इस के बावजूद वे सब देखने में गड-मड नज़र आते हैं। बुनियादी अक़ीदे, नैतिक शिक्षायें, शरअी हुक्म, समझाना-बुझाना, तस्कीन व तसल्ली, डांट-फटकार, धमकी और अज़ाब, ख़ुशख़बरी और सवाब, तथा बुद्धि-विवेक, प्रकृति, ऐतिहासिक गवाहियों और सृष्टि-चिन्हों में से एक-एक करके बार-बार दलीलें लाई जाती हैं। एक ही विषय भिन्न-भिन्न स्थानों पर विभिन्न तरीक़ों से दुहराया गया है। एक के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा, बिल्कुल अचानक शुरू हो जाता है। फिर सम्बोधन भी रह-रह कर बदल जाता है, मध्य पुरुष देखते-देखते अन्य पुरुष बन जाता है और अन्य पुरुष मध्य, प्रथम पुरुष देखते-देखते यकायकी अन्य पुरुष की हैसियत अपना लेता है और अन्य पुरुष प्रथम पुरुष के रूप में सामने आ जाता है। इसके अलावा जो वार्ता भी है, वह जाने-बूझे ढंग से बहुत कुछ भिन्न है। अक़ीदों का बयान है तो दर्शन व तर्कशास्त्र की शैली में, नैतिक शिक्षा है तो नीति शास्त्र के ढंग की नहीं, खंडन-मंडन है, तो शास्त्रार्थ के तरीक़े पर नहीं, राजनीति व संस्कृति और अर्थ व समाज पर वार्ता है तो समाज शास्त्र के ढंग पर नहीं, क़ानून और उसके मूलाधारों का उल्लेख है, तो क़ानूनदानों के तरीक़ों के बिल्कुल अलग और ऐतिहासिक घटनाओं का बयान है तो इतिहास-लेखन की कला से बिल्कुल भिन्न, मतलब यह कि हमारे मस्तिष्क, तर्क-वितर्क और समझने-समझाने के जिन लिखने-पढ़ने और बोलने की शैलियों से परिचित हैं, क़ुरआन मजीद की

वर्णन-शैली उन सब से अलग है। देखने में तो यही लगता है कि यह वह कलाम नहीं, जो क्रमवार हो, बल्कि फैले वाक्यों और बिखरे टुकड़ों का योग है, लेकिन वास्तविकता इसके बिल्कुल विपरीत है, इसमें ऊंचे दर्जे का आपसी संबंध और क्रम पाया जाता है, लेकिन इस क्रम को पा लेने के लिए ज़रूरी है कि दिमाग़ से उन बोलने और लिखने के सांचों को निकाल दिया जाए जो सामान्य पुस्तकों के पढ़ते-रहने या लेक्चरों के सुनते रहने से हमारे दिमाग़ों में ढाला जा चुका है और फिर एक नई दृष्टि लेकर क़ुरआन् मजीद का अध्ययन किया जाए। यह नई दृष्टि बनावटी ढंग से नहीं अपनाई जा सकती, बल्कि क़ुरआनी शैली के अछूतेपन के प्राकृतिक कारणों और उसकी अहम मसलहतों को जान लेने पर वह ख़ुद पैदा हो जाती है।

अछूतेपन के कारण

क़ुरआन मजीद की वर्णन-शैली सामान्य पुस्तकों से जिन कारणों से भिन्न है, वे इस प्रकार हैं:–

१. क़ुरआन मजीद 'विषयों' का नहीं, बल्कि भाषणों का संग्रह है, इसलिए उसकी शैली के पुस्तकों जैसी शैली होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। स्वाभाविक रूप से उसकी शैली 'भाषणीय' शैली हो सकती थी और वह वही है।

२. ये भाषण भी, किसी उपदेशक के उपदेश या किसी प्रोफ़ेसर के लेक्चर नहीं, बल्कि एक आवाहक के आह्वान (दावत) हैं, ऐसे आवाहक के आह्वान, जो मनुष्यों के बीच में खड़ा होकर उन्हें ग़लत राहों से हटाने और सीधी राह की ओर लाने की कोशिश कर रहा हो, इस लिए उसकी शैली भी उपदेश या कक्षा-पाठ जैसी नहीं, बल्कि पूरी तरह आह्वानपूर्ण है।

३. वह दावत, जिसके सिलसिले में ये भाषण दिये गये थे, २३ साल की लम्बी मुद्दत में, और विभिन्न परिस्थितियों और मरहलों से होता हुआ अपनी ऊंचाइयों को पहुंचा था इसलिये ये भाषण, न तो कुछ महीनों की छोटी-सी मुद्दत में लगातार दिये गये थे, न लगभग एक-से हालात में दिये गए थे और न एक ही जैसे लोगों को सामने रख कर दिये गये हैं,' बल्कि वास्तविकता ठीक इसके विपरीत थी।

इन तीनों बातों का जो तक़ाज़ा था, उस पर अच्छी तरह विचार कर लीजिये। यह खुली हुई सच्चाई है कि दावत वाले भाषणों के तक़ाज़े लिखने-लिखाने, समझने-समझाने और पढ़ने-पढ़ाने, सभी के तक़ाज़ों से भिन्न होते हैं। अगर एक आवाहक अपने भाषण में एक लेखक या प्रोफ़ेसर का-सा ढंग अपना ले, तो उसकी वाणी नीरस, बेअसर और कानों के लिये अप्रिय होकर रह जायेगी। ऐसे ही अगर वह केवल एक उपदेशक की-सी पोज़ीशन अपना ले तो अपने दावत के इन्क़लाबी उद्देश्यों को कभी पूरा न कर सकेगा। इसमें सन्देह नहीं कि लेखक या प्रोफ़ेसर की बातें भी तर्कपूर्ण और वैज्ञानिक होती हैं और आवाहक की वाणी भी। मगर लेखक या प्रोफ़ेसर की बहस सिर्फ़ उसूली होती है, जबकि वक्ता की बातें बुनियादी तौर पर स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक होती हैं, मुख्य रूप से उस वक्ता की, जो आवाहक भी हो। ऐसे वक्ता का काम केवल यही नहीं होता कि एक-लेखक की तरह अपने विचारों को शब्दों में अलंकृत कर दे या एक प्रोफ़ेसर की तरह किसी वैज्ञानिक सिद्धान्त को कुछ एक जैसी योग्यता रखने वाले छात्रों के दिमाग़ों में सविस्तार उतार दे, या एक उपदेशक की तरह दिलों में नरमी पैदा कर दे और पिघला दे। इसके विपरीत उसका काम निश्चित रूप से कहीं ज़्यादा ऊंचा

और कठिन होता है। एक ओर तो उसके सामने अनेक मनोवृत्तियां रखने वाले और विभिन्न योग्यताएं रखने वाले लोग होते हैं। शहरी और देहाती, पढ़े-लिखे और अपढ़, सज्जन और दुर्जन, वह्य और रिसालत के मानने वाले और उनके इन्कारी, तौहीद परस्त और मुश्रिक, हर तरह के लोगों को उसे सत्य मार्ग की ओर बुलाना होता है। दूसरी ओर, साथ-साथ, उसे इन लोगों के मानसिक व व्यावहारिक प्रशिक्षण का ज़िम्मेदारी भरा कर्त्तव्य निभाना और उन्हें दीनी हुक्मों व हिदायतों को सिखाना होता है, जो उसकी पुकार पर ईमान ला चुकते हैं। 'सत्य-मार्ग की ओर बुलाने' का अर्थ केवल यही नहीं होता कि अपनी बात को बुद्धि व तर्क के तराज़ू में तौल कर लोगों के सामने रख दिया जाये, बल्कि यह भी होता है कि उसे दिलों में उतार देने का हर सम्भव प्रयत्न किया जाये और इस ध्येय से पहले उनके भीतर से मुद्दतों से जमे हुए झूठे विचारों को उखाड़ फेंका जाये और ग़लत, मगर बड़ी ही कोमल भावनाओं की पकड़ से उन्हें आज़ाद करा लिया जाये। ज़ाहिर है कि इस काम के लिए विशेष प्रकार के दिल व दिमाग़ ही नहीं, विशेष प्रकार की भाषा भी चाहिए। भीतर की तपन और तर्कों की शक्ति ही नहीं, बयान का जादू भी ज़रूरी है और यह 'जादू' आवाहक की वाणी में पैदा नहीं हो सकता, जब तक कि उसकी तेज़ निगाहें अपने सम्बोधित जनों के विचारों का, उनके रुझानों का, उनके मनोविज्ञान का सफल अवलोकन न करती रहें और वह इन्हीं को दृष्टि में रख कर कभी तर्क की और कभी उपदेश की, कभी प्रेम-भाव की और कभी डरावे-धमकावे की, कभी चाह की और कभी ग़ुस्से की, कभी लगाव की और कभी घृणा की शैली न अपनाता रहे और इस मक़सद के लिए वह रह-रह कर सम्बोधन न बदलता रहे—ऐसे ही दावत का साथ देने

वालों के आचार-विचार को प्रशिक्षित करने का और उन्हें 'दीन' के 'हुक्म व हिदायत' देने का अर्थ भी यह नहीं है कि उनके हाथों में नसीहतों और क़ानूनों का संग्रह दे दिया जाये, बल्कि यह है कि पूरी सूझ-बूझ और सावधानी के साथ उनकी ज़िन्दगियों को दावत के सांचे में धीरे-धीरे ढालते रहा जाये और यह उद्देश्य उस समय तक हरगिज़ प्राप्त नहीं हो सकता, जब तक कि आवाहक हुक्मों के सैद्धान्तिक पहलुओं से आगे बढ़ कर माहौल के तक़ाज़ों, स्थिति की अनुकूलताओं, लोगों की मानसिक स्थितियों और उनके दिल की तैयारी का भी पूरी तरह ध्यान न रखे और उन्हीं के अनुसार उनसे बातें न करे—अब यह कहना बिल्कुल ग़ैर-ज़रूरी होगा कि दूसरे किसी व्यक्ति को बात करते समय, इस तरह की बातों में कोई ताल्लुक़ ही नहीं होता और जब सच यह है तो ज़रूरी ठहरा कि आवाहक की वर्णन-शैली भी अपने प्रकार की अलग ही शैली हो।

क़ुरआन मजीद दावती भाषणों का संग्रह है। मूल वक्ता की हैसियत अल्लाह की है, सम्बोधन पूरी मानव-जाति से है, वह्य के फ़रिश्ते (हज़रत जिबरील) और साहिबे वह्य (हज़रत मुहम्मद सल्ल०) माध्यम और प्रतिनिधि की हैसियत रखते हैं, अर्थात् क़ुरआन नाम है उन भाषणों का, जो संसार के महान शासक ने अपनी संसार-वासी प्रजा को सम्बोधित करके दिए हैं। इसलिये इसकी शैली में वही सब बातें निश्चित रूप से मौजूद हैं, जिनकी ओर अभी इशारे किये गये। स्वाभाविक रूप से उसमें मौक़े के हिसाब से गर्मी भी है और नर्मी भी, धमकियां भी हैं और ख़ुशख़बरियां भी, दलीलें भी हैं और नसीहतें भी, लुभावनी बातें भी हैं, और डरावे भी, प्यार के बोल भी हैं और ग़ज़ब की कड़कें भी। फिर इन्हीं बातों का जहां जैसा तक़ाज़ा हुआ, सम्बोधन भी बराबर बदलता गया। जैसे अभी जो मध्यम पुरुष था, उसे

यकायकी अन्य पुरुष बना दिया गया है, मानो वक्ता ने उसकी ग़फ़लत, कोताही, दुस्साहस को देख कर, मारे ग़ुस्से और नफ़रत के, उसकी ओर से अपनी निगाहें हटा ली हैं और अब उससे आमने-सामने बात करने को भी तैयार नहीं। या, जैसे, असल प्रथम पुरुष अर्थात् अल्लाह ने अपने आपको जगह-जगह 'अन्य पुरुष' ठहरा दिया है और बीच के माध्यमों—वह्य लाने वाले फ़रिश्ते या साहिबे वह्य सल्ल० को अपनी जगह प्रथम पुरुष बना दिया है, कि कितनी ही बातें ऐसी होती हैं, जिनका परोक्ष शैली ही में कहने का प्रभाव होता है और आनन्द मिलता है। ऐसे ही कितनी जगहों पर तो उसने असल मध्यम पुरुष को प्रथम पुरुष और ख़ुदा को मध्यम पुरुष बना दिया है। यह मानो उसकी ओर से इस बात की पुष्टि है, या फिर उसकी प्रकृति का प्रतिनिधित्व, कि उसे अपने पालनहार से यों निवेदन करना चाहिये।

फिर यह भी दावती भाषणों ही का तक़ाजा था कि क़ुरआन मजीद में अनेक मौक़ों पर एक चर्चा के बाद यकायकी दूसरी चर्चा शुरू हो गई है, जिसकी प्रत्यक्ष में पहली चर्चा से कोई सम्बन्ध नहीं दिखाई देता। अभी तौहीद पर बातें हो रही थीं कि अचानक आख़िरत और कर्मों के हिसाब-किताब की बात आ गई; क़ुरआन और नबूवत की सत्यता पर दलीलें दी जा रही थीं कि तुरन्त सत्य के इन्कारियों की दुनियापरस्तियों पर समीक्षा होने लगी, अरब-मुश्रिकों की हठधर्मियों का उल्लेख था कि किताब वालों के ज़ुल्मों और ग़ैर ज़िम्मेदाराना हरकतों का बयान शुरू हो गया—क़ुरआन मजीद को एक पुस्तक और एक 'रचना' विचार करके देखिये, तो कुछ न समझ में आयेगा कि यह कौन-सी शैली है? लेकिन अगर एक आवाहक के स्थान पर खड़े होकर देखिये और आपके सामने वह पूरी पृष्ठभूमि भी हो, जो 'कलामे इलाही' से

ताल्लुक़ रखती थी, तो उसकी एक-एक बात अपनी जगह वैसी ही सही नज़र आयेगी, जैसाकि अंगूठी में नग हुआ करता है।

विषयों की 'तकरार'

क़ुरआन मजीद में बहसों और विषयों की अधिकता से तकरार (बार-बार पुनरावृत्ति) है। कितने ही हुक्म और हिदायतें, धमकियां, ख़ुशख़बरियां, चेतावनियां और नसीहतें, दलीलें और गवाहियाँ और ऐतिहासिक घटनाएं ऐसी हैं जिनका उल्लेख जगह-जगह हुआ है। जैसा कि उसने अपने बारे में ख़ुद कहा है कि:—

'– एक ऐसी किताब, जिसके विषय आपस में मिलते-जुलते और बार-बार दुहराये हुए हैं।' —ज़ुमरः २३

सरसरी तौर से देखने में यह कोई पसन्दीदा बात नहीं और एक अनजान व्यक्ति के दिमाग़ पर विषयों की यह तकरार बड़ा बोझ होगी, लेकिन क़ुरआन मजीद के उतरने के तरीक़े और उतरने के मक़सद दोनों ही बातों का क़तई तक़ाज़ा था कि ये विषय बार-बार दुहराये जातेः—

१. उतरने के तरीक़े का तक़ाज़ा इसलिये था कि क़ुरआन मजीद जब एक व्यावहारिक और विकासपरक आह्वान के साथ-साथ उतर रहा था जैसा कि पिछले पृष्ठों में सविस्तार मालूम हो चुका, तो ज़रूरी था, कि आह्वान् जिस समय तक जिस मरहले में था, उस समय तक सिर्फ़ वही हिदायतें की जातीं, जो उस मरहले से मेल खाती थीं और दूसरे मरहले की बातें बिल्कुल न छेड़ी जातीं, बल्कि इसी मरहले की बातों को ज़रूरत के मुताबिक़ दुहराया जाता रहता, चाहे इसमें कितनी ही मुद्दत क्यों न गुज़र जाती।

२. उतरने के मक्सद का तक़ाज़ा इसलिए था कि कोई भी आह्वान उसी समय तक सफल हो सकता है, जब उसके मानने वालों के दिल व दिमाग़ में उसकी बुनियादें पूरी मज़बूती से जम गई हों और फिर उनकी बराबर देखभाल भी होती रहे, वरन् अनुमान और अनुभव, दोनों का फ़ैसला है कि आह्वान अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं हो सकता, इसलिये कुरआनी आह्वान के उद्देश्यों की पूर्ति भी मांग करती थी कि उसकी मौलिक शिक्षाओं को पहले दिन से आख़िरी समय तक किसी मौक़े पर और किसी हाल में भी नज़रों से ओझल न होने दिया जाये और आह्वान के हर मरहले में उन्हें बार-बार दुहराया जाता रहे और उनकी बराबर याददेहानी होती रहे। इसीलिए आप देखेंगे कि कुरआन मजीद के भीतर दूसरे विषयों की तकरार तो किसी एक ख़ास मरहले ही तक सीमित है, लेकिन तौहीद, आख़िरत, बदले के दिन, रिसालत, भक्ति व आज्ञापालन, नेकी और परहेज़गारी, सब्र व शुक्र, अल्लाह पर भरोसा और झुकाव, नमाज़ व ज़कात और रिश्तेदारियों को जोड़ने आदि मामलों में उल्लेख से कुरआन का कोई पृष्ठ ख़ाली नहीं और ये बातें उसके अन्दर इस तरह फैली हुई हैं, जिस तरह मानव-शरीर में नसें फैली होती हैं, क्योंकि इन ही की मज़बूती से दीन की मज़बूती जुड़ी है।

लेकिन 'तकरार' शब्द से यह ग़लतफ़हमी न हो कि एक ही बात को, शब्द व अर्थ, दोनों दृष्टि से, ज्यों का त्यों दुहरा दिया गया है। नहीं, ऐसा बिल्कुल नहीं है। कुरआन मजीद में, इसके बावजूद कि एक ही हुक्म, एक ही क़िस्से और एक ही दलील को दसियों-बीसियों जगहों पर बयान किया गया है, लेकिन मात्र 'तकरार' कहीं भी नहीं है, क्योंकि वह हर-हर जगह, समझाने-बुझाने और याद दिहानी का कोई न कोई नया पहलू पैदा

कर देता है, मिसाल के तौर पर वह एक ही क़िस्से संक्षेप व विस्तार की विभिन्न सीमाओं में बयान करता है, लेकिन घटनाओं के क्रम और वर्णन के ढंग में नयापन भी पैदा कर देता है, शब्दों को बदल देता है, क़िस्से के विभिन्न भागों में से किसी को कहीं अधिक और किसी को कहीं कम कर देता है। इन बातों से जहां यह फ़ायदा होता है कि एक ही बात को एक ही वाक्य और एक ही शैली में सुनते-सुनते तबीयतों में ना-गवारी नहीं महसूस होती, मन ऊब और कान थक नहीं जाते, वहां इससे बड़ा लाभ यह भी होता है कि याददिहानी और दलीलों के पहलू बदल जाते हैं और अल्लाह की 'हिकमत' के कुछ नये पहलू उभर आते हैं, जिससे सुनने-समझने वालों पर हर बार एक नया प्रभाव पड़ता है। इस तरह क़िस्सों की यह तकरार, तकरार है भी और नहीं भी है। इसी पर हुक्मों की तकरार, नसीहतों की तकरार और दूसरे विषयों की तकरार का भी अनुमान कर लीजिये। यहां केवल यहीं नहीं है कि एक-एक विषय को सौ-सौ रंग से बांधा गया है, बल्कि इनमें सैंकड़ों हिकमतें और दावती फ़ायदे भर दिए गए हैं।

अब जो व्यक्ति भी इन मसलहतों पर नज़र डालेगा और जो कुरआन के भीतर विषयों की तकरार की स्थिति को भी समझ लेगा, यक़ीन है कि उसके लिये किसी एतराज़ का कोई प्रश्न ही बाक़ी न रह जायेगा और वह इस बयान के तकरार को क़ुरआन के उच्च गुणों में गिनेगा, जैसा कि स्वयं उसने किया है, और उसे उसकी दावत के लिये अनिवार्य बतायेगा, जैसाकि उसने ख़ुद फ़र्माया है।

क़ुरआन और उसके हिस्से

'क़ुरआन' शब्द अरबी भाषा की एक धातु है। इस का शाब्दिक अर्थ है 'अक्षरों और शब्दों को सार्थक क्रम के साथ जोड़ कर ज़ुबान से अदा करना, जिसे 'पढ़ना' कहते हैं। फिर अरबी भाषा के इस सामान्य नियम के अनुसार, कि धातु का प्रयोग 'कर्म' के अर्थ में भी किया जाता है, इस शब्द का प्रयोग उस चीज़ के लिए भी होने लगा, जो पढ़ी जाये। इस तरह, हर पुस्तक और हर किताब को, जिसे पढ़ा जाए, शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से 'क़ुरआन' कह सकते थे, लेकिन जहां तक मुहावरे और वास्तविक प्रयोग का ताल्लुक़ है, हर किताब के लिए 'क़ुरआन' का शब्द इस्तेमाल नहीं किया गया है, बल्कि, मुख्य रूप से, केवल उन्हीं किताबों की हद तक, इसके इस्तेमाल को सीमित रखा गया है, जो अल्लाह की ओर से उतरी हों, मानो यह शब्द अब आसमानी किताबों के लिए 'जातिवाचक' संज्ञा हो गया है और 'क़ुरआन' का अर्थ है अल्लाह की ओर से उतरने वाली किताब। ख़ुद क़ुरआन में यह शब्द कई जगह इस अर्थ में बोला गया है, जैसेः

'और अगर कोई ऐसा 'क़ुरआन' (अर्थात आसमानी किताब) होता, जिस के ज़रिए पहाड़ों को चला दिया जाता।'

—सूरः राद : ३१

यह तो हुआ शब्द 'क़ुरआन' का सामान्य अर्थ। इसके बाद यह शब्द और ख़ास कर लिया गया और इस ने एक विशेष

परिभाषा की हैसियत अपना ली, जिससे तात्पर्य वह 'किताबे इलाही' है, जो हज़रत मुहम्मद सल्ल० पर उतरी है। इस तरह अब यह शब्द शुरू में 'अल' की वृद्धि के साथ, जो अरबी भाषा में शब्दों को 'व्यक्तिवाचक' बना दिये जाने का चिन्ह है, इसी विशेष 'किताब' का नाम हो चुका है और अगर इस आधार पर कि वह आसमानी किताबों की 'जाति वाचक' संज्ञा भी है, किसी और किताबे इलाही के लिए इसका इस्तेमाल हुआ भी, (जैसा कि ख़ुद क़ुरआन मजीद ही में एक जगह तौरात को 'अल-क़ुरआन' कहा गया है। (देखिये सूरः हिज्र, आयत : ९१) तो उसके लिये साफ़ दलीलें मौजूद होंगी।

क़ुरआन मजीद को 'अल-क़ुरआन' कहे जाने और अल्लाह की ओर से उसका यह नाम दिये जाने की असल हिकमतें तो वही जानता है, लेकिन कुछ ताज्जुब नहीं, अगर ये वजहें और हिकमतें निम्न हों:-

(१) क़ुरआन मानव-जीवन का पूर्ण संविधान और सदा का रहनुमा है, इस लिये इसके अनुयायियों का इस के साथ ताल्लुक़ भी पूर्ण और सदा का है। इस ताल्लुक़ का तक़ाज़ा यह है कि वह काग़ज़ के पन्नों पर अंकित रहने से अधिक उनके हृदय-पटल पर अंकित रहे और ज़ुबानें इस के पढ़ने में आमतौर से लगी रहें। चुनांचे इस की सुरक्षा का पहला और बुनियादी ज़रिया भी वास्तविक सुरक्षक की ओर से यही मुक़र्रर किया गया है कि हर ज़माने में हज़ारों हाफ़िज़ों (ज़ुबानी याद करने वालों) के सीने उसके अमानतदार होंगे और लाखों ज़ुबानें उस के पढ़ने से गूंजा करेंगी, इस लिये इस किताब का नाम ही 'क़ुरआन' रखा गया, अर्थात वह किताब जो पढ़ी जाय और पढ़ी जाती रहे।

(२) क़ुरआन के ज़रिये हिदायत उतरने का वह सिलसिला अपने उत्कर्ष–बिन्दु को पहुंचा है, जो हज़रत आदम अलै० के वक़्त से शुरू हुआ था और उसके अन्दर अब तक के उतर चुकने वाले सारे हिदायतनामों की बुनियादी शिक्षायें इकट्ठी और सुरक्षित कर दी गई हैं, यहां तक कि पिछली आसमानी किताबों में से अगर किसी किताब के बारे में हम आज यह मालूम करना चाहें कि उस की मूल शिक्षा और पैग़ाम क्या था, तो ख़ुद इस नाम की किताब से हमें पूरी सफलता कभी नहीं मिल सकती, अगर यह सफलता मिल सकती है, तो इसी क़ुरआन के ज़रिये मिल सकती है। इस तरह यह क़ुरआन कहने को तो एक किताब है, मगर यह वास्तव में वह्य के पूरे सिलसिले और तमाम आसमानी किताबों को 'जमा करने वाला' है। इस लिये इसका नाम 'क़ुरआन' तजवीज़ किया गया, जिसके वास्तविक शाब्दिक अर्थ ही में 'जमा' और इकट्ठा करने का अर्थ मौजूद है।

क़ुरआन मजीद के कुछ और नाम भी हैं, जो उसने अपने लिये अधिकता से इस्तेमाल किये हैं, जैसे–किताब, फ़ुर्क़ान, ज़िक्र, ज़िक्रा, नूर, हुदा आदि, मगर इनकी हैसियत, चूंकि, 'व्यक्तिवाचक' संज्ञा और नाम की–सी नहीं है, जैसा कि शब्द 'क़ुरआन' की थी, इस लिये इस विवाद में पड़ना यहां कुछ ज़रूरी नहीं जान पड़ता कि इन शब्दों का अर्थ क्या है और क़ुरआन मजीद ने अपने को ये नाम भी क्यों दिये हैं?

सूरः

क़ुरआन मजीद, पूरे का पूरा, एक लगातार लेख की हैसियत नहीं रखता, बल्कि वह एक सौ चौदह हिस्सों में बंटा हुआ है, जिनकी शक्ल एक पुस्तक के अध्यायों की–सी समझिये। क़ुरआन के इन हिस्सों को अल्लाह ने 'सूरः' (बहुवचन सूरतें) कहा है।

हर सूरः का एक स्थायी विषय होता है, जो पूरे क़ुरआन के व्यापक और पूर्ण विषय का कोई एक अंश होता है, या फिर उससे ताल्लुक़ रखने वाले मामलों में से कोई ख़ास मामला। सूरः की पूरी बहस उसके इसी केन्द्रीय विषय के चारों ओर घूमती है। यह बहस, जैसा कि चाहिए, अपने उद्देश्य और विषय की दृष्टि से पूरी तरह मुकम्मल होती है और किसी और सूरः की मुहताज नहीं होती। हर सूरः का केन्द्रीय विषय पहले और बाद वाली सूरतों के केन्द्रीय विषयों से एक तार्किक और स्वाभाविक सम्बन्ध रखता है। लेकिन इन सारी बातों को समझने के लिए बड़े चिन्तन–मनन की ज़रूरत है, क्योंकि इन की कोई व्याख्या ख़ुद क़ुरआन में मौजूद नहीं है और इन्हें हमारे सोच–विचार ही के लिए छोड़ रखा गया है, जैसा कि क़ुरआनी दावत के स्वरूप का तक़ाज़ा है।

'सूरः' का शब्द 'सूर' से निकला है, जिसका अर्थ 'शहर पनाह' (फ़सील) है। मस्तिष्क यह जानना चाहेगा कि क़ुरआन के इन हिस्सों को 'सूरः क्यों फ़र्माया गया है? लेकिन चूंकि इस बारे में भी अल्लाह या उस के रसूल की ओर से कोई स्पष्टीकरण नहीं किया गया है, इस लिये इसके कारण भी अनुमान ही के आधार पर निश्चित किए जा सकते हैं, विचार करने से इसके दो ही कारण समझ में आते हैं:-

१. एक कारण तो क़ुरआन के इन हिस्सों में से हर हिस्से की वह स्थाई हैसियत है, जिस का उल्लेख अभी किया गया। अर्थात क़ुरआन के हिस्सों को 'सूरः' का नाम देकर इस सच्चाई की ओर इशारा किया गया है कि जिस तरह कोई शहर अपनी फ़सीलों के ज़रिए अपनी स्थाई हैसियत को प्रकट करता और देश की दूसरी बस्तियों से अलग रहता है, इसी प्रकार क़ुरआन के हर हिस्से अर्थात हर सूरः की बात–चीत का एक स्थाई शीर्षक होता है,

वार्ता की एक स्थाई व्यवस्था होती है, अनिवार्य विस्तृत विवेचन और प्रासंगिक वार्ताएं होती हैं और इस तरह वह एक स्थाई और दूसरी सूरतों से अलग हैसियत की मालिक होती है। चुनांचे बुद्धि कहती है कि अगर हर सूरः की अपनी कोई स्थाई हैसियत भी न होती, तो पूरे कुरआन को एक सौ चौदह सूरतों में बांट देने के बजाय लगातार एक ही विषय रहने दिया गया होता।

२. दूसरा कारण कुरआन मजीद का वह पूर्ण संरक्षण है, जिसे हम सविस्तार पिछले पृष्ठों में लिख चुके हैं, अर्थात चूंकि अल्लाह का यह फ़ैसला था कि कुरआन को वह सदा के लिए सुरक्षित रखेगा, इसलिए उसके हिस्सों और अध्यायों को 'सूरः' के नाम से याद करके उसने वास्तव में अपने इसी फ़ैसले का एक विशेष शैली में एलान किया है, मानो ऐसा इस लिए किया गया है कि कुरआन मजीद सच्ची बातों की ऐसी आध्यात्मिक बस्तियों का योग है, जो गैबी हिफ़ाज़त की मज़बूत 'फ़सीलों' से घेर कर ज़माने की हर दख़लंदाज़ी से सदा के लिये सुरक्षित कर दिया गया है।

सूरतों के नाम 'तौक़ीफ़ी' हैं अर्थात या तो अल्लाह के रखे हुये हैं या उसके रसूल के। कई सूरतों के एक से अधिक नाम भी हैं। फिर इन तौक़ीफ़ी नामों के अलावा दूसरे नाम भी हैं, जिन्हें उम्मत (मुस्लिम समुदाय) के 'बड़ों' ने सूरः के विषयों का स्वरूप प्रकट करने के लिए बाद में ख़ुद रख लिया है। लेकिन स्पष्ट है कि इन नामों की हैसियत असल नाम की नहीं है। असल नाम तो वही हैं जो अल्लाह के रसूल सल्ल० से नक़ल किये गये हैं, मुख्य रूप से हर सूरः का वह नाम, जो आमतौर से प्रसिद्ध है और क़ुरआन मजीद की प्रतियों में लिखा चला आ रहा है, निश्चित रूप से इसी तरह का और तौक़ीफ़ी ही है।

सूरतों के नाम किसी एक ही ढंग पर नहीं रखे गये हैं, बल्कि विभिन्न सूरतों के नाम रखने में अलग–अलग अन्दाज़ अपनाये गये हैं-

१. अनेक सूरतों के नाम इनके आरम्भिक शब्द ही को क़रार दे दिया गया है, जैसे, सूरः ताहा, सूरः यासीन और सूरः क़ाफ़ आदि।

२. बहुत–सी ऐसी हैं, जिनके नाम रखने के लिये उनके भीतर के किसी उभरे शब्द को ले लिया गया है, जैसे, सूरः बक़रः, सूरः ज़ुख़्रुफ़ और सूरः नम्ल आदि।

३. कुछ के नाम रखने के लिए ऐसे शब्द चुन लिये गए हैं, जिन से सूरः के किसी महत्वपूर्ण विषय की ओर इशारा होता है, जैसे, सूरः आले इमरान और सूरः नूर आदि।

४. कुछ के नाम रखने में उनके मूल विषय को सामने रखा गया है, जैसे, सूरः बरात और सूरः इख़्लास आदि।

नाम रखने के ये विभिन्न तरीक़े, स्पष्ट है कि अरबी रूचि के अनुसार ही अपनाये गये थे।

सूरतों के फैलाव में आपस में बड़ा अन्तर है। अगर कोई सूरः इतनी लम्बी है कि पूरे क़ुरआन के बारहवें–तेरहवें हिस्से तक फैली हुई है, तो कोई इतनी छोटी भी है कि उसमें दो तीन छोटे–छोटे वाक्यों और चौदह–पन्द्रह शब्दों से अधिक नहीं, मगर छोटी सूरतों के संक्षिप्त होने का कदापि यह अर्थ नहीं कि उसमें वर्णित तत्व भी थोड़ा है। स्थिति जो कुछ है, वह यह है कि बड़ी सूरतों में सत्य–ज्योति की जो किरणें एक विशाल क्षेत्र तक फैली हुई हैं, वही छोटी सूरतों में एक छोटे–से क्षेत्र के भीतर सिमट गई हैं। सच तो यह है कि इन सूरतों की हैसियत 'सारगर्भित

सूक्तियों' की—सी है और अनेकों धार्मिक मसलहतों का तक़ाज़ा यही था कि क़ुरआन मजीद के अन्दर एक तायदाद छोटी सूरतों की भी हो:—

१. सब से अहम मसलहत तो धर्म की मौलिक शिक्षाओं और उसके बुनियादी विचारों को मन में हमेशा ताज़ा रखने की थी, जो ज़ाहिर है कि बहुत ही बड़ी धार्मिक ज़रूरत थी। लम्बी सूरतों में न सिर्फ़ यह कि ये शिक्षायें मौजदू हैं, बल्कि पूरे विस्तार और ज़रूरी दलीलों के साथ मौजूद हैं, इसलिए उन्हें याद रखने वाला इन शिक्षाओं और विचारों को अपने मन में बराबर ताज़ा रख सकता है। लेकिन वास्तविकता यह है कि ऐसे लोग कुछ प्रतिशत से अधिक कभी न मिल सकेंगे, जो लम्बी सूरतों के याद कर लेने और फिर उन्हें बराबर याद रखने वाले हों। इस लिए आम मुसलमानों की दृष्टि से ज़रूरी था कि छोटी-छोटी सूरतें भी उतार दी जायें, जिनमें धर्म की बुनियादी हिदायतों को संक्षेप में बयान कर दिया गया हो, ताकि इस्लामी समाज का कोई एक व्यक्ति भी उन्हें याद कर लेने और (कम से कम नमाज़ों में तों निश्चित रूप से) बार-बार दोहराते रहने और इस तरह धर्म की इन बुनियादी बातों को अपन मन में लगातार ताज़ा करते रहने के शुभ कार्य से महरूम न रह सकें। फिर अगर विचार कीजिये तो वे कुछ प्रतिशत लोग भी, जो लम्बी सूरतों के याद रखने वाले होते हैं, इस ज़रूरत से उदासीन न मिलेंगे, क्योंकि मानव-मस्तिष्क का अध्ययन बताता है कि अगर विस्तृत विवेचनों को वह अपने लिए सन्तोष व शान्ति का कारण पाता है, तो साथ ही उनकी फैली हुई पहनाइयों में प्रायः खो भी जाता है और अर्थों के पूरे सिलसिले को अपनी पकड़ में नहीं ले पाता, बल्कि उसके लिये इस बात का ज़रूरतमन्द होता है कि ये अर्थ कुछ संक्षिप्त शब्दों में भी अदा करके इसे सुरक्षित करा

दिये जाएं। मतलब यह कि आम और ख़ास सभी के लिए इस बात की ज़रूरत थी कि धर्म की सैद्धांतिक शिक्षायें, कुछ वाक्यों में और छोटी-छोटी सूरतों की शक्ल में बयान कर दी जायें, ताकि वे हृदय-पटल पर अंकित हो रहें, ज़ुबानें उनके ज़िक्र (स्मरण) से स्वतः हरकत में आ जाया करें, और वे इस्लामी समाज में उन कहावतों का स्थान ले लें, जो आमतौर से ज़ुबानों पर चढ़ी हुई होती हैं और मानी हुई सच्चाइयों का प्रतिनिधित्व करती हैं—स्पष्ट रूप से यह दीन और उसके मानने वालों की एक ऐसी ज़रूरत थी जो सामयिक न थी, बल्कि सदा की थी।

२. दूसरी ख़ास मसलहत, शुरू के दिनों में क़ुरआनी पैग़ाम की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट करा सकने की थी, क्योंकि जिस वक़्त क़ुरआन ने अपनी दावत का आरम्भ किया था, उस वक़्त उसके सुनने के लिए स्वाभाविक रूप से लोगों के भीतर कोई चाव न था। इस स्थिति का खुला हुआ तक़ाज़ा यह था कि इन दिनों जो बातें फ़र्माई जातीं, वे एक ओर तो सब से अच्छी शैली और झिंझोड़ देने वाले अन्दाज़ में होतीं, दूसरी ओर सैद्धांतिक भी होतीं और संक्षिप्त भी, ताकि गफ़लत और नफ़रत के मारे हुए दिलों तक भी उनके शब्द जा पहुंचते। फिर ज्यों-ज्यों ध्यान और चाव बढ़ता जाये और लोग बात सुनने के लिए तैयार होते जायें, चाहे वह तैयारी किसी भी कारण हो, आह्वानपरक सम्बोधन में फैलाव पैदा किया जाता रहे और जब वह घड़ी आ जाए कि ध्यान की कमी और चाव न होना, रूचि और झुकाव में बदल चुका हो तो धर्म की बातों को सविस्तार सुनाया जाये और वह्य बराबर आने लगे—चुनांचे क़ुरआन मजीद की छोटी, दर्मियानी और बड़ी सूरतें आम तौर पर हालात के इन्हीं तक़ाज़ों के तहत उतरी हैं और छोटी सूरतें प्रायः उसी ज़माने की उतरी हुई हैं, जब क़ुरआनी दावत अपने

आरम्भिक मरहलों में थी और दिलों के दरवाज़ें अभी उसके लिए खुले नहीं थे।

आयत

सूर: के ख़ास ख़ास टुकड़ों को, जिनकी हदबन्दी अल्लाह ही की ओर से हुई है, 'आयत' कहा गया है। सूरतों की तरह आयतों के फैलाव में भी काफ़ी अन्तर पाया जाता है। कुछ आयतें अगर एक-दो शब्दों की हैं, तो कुछ आठ-दस, कुछ पन्द्रह-बीस पर और कुछ उससे भी अधिक शब्दों की। फिर ज़रूरी नहीं कि हर आयत एक पूरा वाक्य हो, बल्कि अधिकांश आयतें अगर इस प्रकार की हैं, तो बहुत सी ऐसी भी हैं कि वाक्य उनमें से कई एक के मिलने के बाद पूरा होता है। ऐसे ही, इसके विपरीत कितनी ही आयतें ऐसी भी हैं, जिनमें से हरेक, एक से अधिक वाक्यों पर आधारित है। इसका कारण यह है कि आयतों की मात्रा तय करने में वाक्यों की पूर्णता के मामले को नहीं, बल्कि 'काफ़िये' (पदों) की व्यवस्था को प्रधानता दी गई है, जिसकी दो अहम मसलहतें थीं:—

१. एक तो यह कि वाक्य 'क़ाफ़ियेवार' (पद युक्त) होना अरबी साहित्य के गुणों में शामिल था और अरब वासी इसमें बड़ा रस लेते हैं।

२. दूसरी यह कि क़ुरआन मजीद याद कर सकने में यह चीज़ बड़ी सहायक थी। कविता की तरह 'क़ाफ़ियेवार' वाक्यों को भी मानव-स्मृति, जिस आसानी से अपनी पकड़ में ले लेती है, इसका अनुभव हर पढ़े-लिखे व्यक्ति को होगा। इसलिये क़ुरआन मजीद का उसकी सुरक्षा के लिये भी और उसके मानने वालों की अमली ज़रूरत की दृष्टि से भी, जिस तरह व्यापक स्तर पर याद कर लिया जाना ज़रूरी था, उसका तक़ाज़ा था कि वाक्य 'क़ाफ़ियेवार' हों।

'आयत' का शाब्दिक अर्थ निशानी और चिन्ह है अर्थात् वह प्रकट वस्तु, जो किसी छिपी हुई सच्चाई की ओर रहनुमाई कर रही हो, अरबी भाषा में 'आयत' कहलाती है। शब्द आयत के इस मूल अर्थ को अगर सामने रख कर विचार किया जाये तो क़ुरआन की आयतों को 'आयत' कहे जाने के कारण बहुत कुछ समझ में आ जायेंगे, जैसे:–

१. क़ुरआन की आयतें एक चमत्कारिक वाणी का हिस्सा होने की हैसियत से उसके 'कलामे इलाही' होने की 'निशानी' और दलील है, इसलिये इन्हें 'आयत' के नाम से याद किया गया है।

२. क़ुरआन की आयतें ख़ुद 'रहनुमाई' हैं, क्योंकि इनसे अल्लाह के गुणों का और उसके हुक्मों और हिदायतों का ज्ञान होता है, इसलिये इन्हें भी 'आयत' कहा गया।

३. क़ुरआनी शिक्षाओं की बुनियाद 'आर्डर' और 'अक़ीदे की ज़बरदस्ती' पर नहीं, बल्कि सोच-विचार और दलीलों पर क़ायम है, और उसकी बातें सतर्क वार्त्ता की हैसियत रखती हैं, मानो क़ुरआन सिर्फ़ हुक्मों व हिदायतों ही का नाम नहीं है, बल्कि सबूतों व दलीलों का भी नाम है, इसीलिये उसके हिस्सों को आयत फ़र्माया गया, ताकि उसकी यह विशेषता आंखों से ओझल न होने पाये।

क़ुरआनी आयतें अपने उतरने के समय की दृष्टि से दो प्रकार की हैं–मक्की और मदनी। मक्की वे आयतें कही जाती हैं, जो हिजरत से पहले उतरी थीं, चाहे वे मक्के में उतरी हों या किसी और जगह। मदनी उन आयतों को कहा जाता है जो हिजरत के बाद उतरी थीं, चाहे वे मदीने में उतरी हों या मदीने से बाहर किसी और जगह।

पारे और रुकूअ

पूरे क़ुरआन को बराबर तीस हिस्सों में और फिर हर हिस्सा और कुछ छोटे-छोटे हिस्सों में बांट दिया गया है। पहली क़िस्म के हिस्सों को 'पारा' और दूसरी क़िस्म के हिस्सों को 'रुकूअ' कहते हैं। वह विभाजन 'तौक़ीफ़ी' नहीं है। तौक़ीफ़ी होना तो दूर की बात, नबूवत-काल में, यहां तक कि शुरू के ख़लीफ़ों के दौर में भी, इसका कोई वजूद न था, बल्कि ये बाद की चीज़ें हैं। पारों का विभाजन हज्जाज इब्न यूसुफ़ के गर्वनर-काल (सन ७३ हि०—९५ हि०) में हुआ और रुकुओं का विभाजन और भी आगे चल कर किया गया। यही कारण है कि इन विभाजनों को कोई ख़ास और क़तई शरई अहमियत हासिल नहीं है, यही कारण है कि क़ुरआन मजीद की प्रतियों में फ़लां हिस्से (पारे) या फ़लां 'रुकूअ' का शब्द मूल पाठ के बीच नहीं लिखा जाता, बल्कि हाशिए में लिख दिया जाता है, ताकि किसी को उनके तौक़ीफ़ी होने की ग़लतफ़हमी न हो सके।

वे धार्मिक मसलहतें, जिनके लिए ये विभाजन किए गए थे, ये हैं कि इनसे आम लोगों को क़ुरआन मजीद के पढ़ने और याद करने में कुछ आसानियां मिल जायेंगी और कुछ रहनुमाइयां हासिल हो जायेंगी, जैसा कि आगे के विस्तृत विवेचनों से स्पष्ट होगा।

१. पारों का विभाजन, महीनों के दिनों को सामने रख कर किया गया है। इसके पीछे मौलिक रूप से इस ज़रूरत का एहसास काम कर रहा था कि एक मोमिन (ईमान वाले) के लिए अपने दीन से अपने ताल्लुक़ को ज़िन्दा करना और जगाए रखना हर क्षण ज़रूरी है और इसका सबसे महत्त्वपूर्ण और पहला उपाय, स्पष्ट

रूप से, यह है कि वह पूरे क़ुरआन की तिलावत (पाठ) किया करे। अब प्रश्न यह पैदा हो रहा था कि इस तिलावत के बारे में आम लोगों का अमल क्या हो? और वे किस मात्रा में क़ुरआन पढ़ा करें? दीन के जिन सेवकों ने पारों का विभाजन किया है, उनके मन में इसका उत्तर यह आया कि पूरे क़ुरआन की तिलावत के लिए एक महीने की मुद्दत, एक मुनासिब मुद्दत होगी और आम तौर से लोगों को हर दिन इसका तीसवां हिस्सा पढ़ते रहना चाहिए। इस विचार के आते ही उन्होंने क़ुरआन को तीस बराबर के भागों में बांट भी दिया, ताकि लोग अपनी हर दिन की तिलावट के लिए इस मात्रा का निश्चय करने के कष्ट से बच सकें। इस सिलसिले में उन्होंने शायद इन हदीसों से रहनुमाई पाई, जिनमें पूरे क़ुरआन को एक महीने में पढ़ने की बात मौजूद है, जैसे सही बुख़ारी की वह हदीस, जो पिछले पृष्ठों मे अंकित की जा चुकी है और जिसमें यह उल्लेखनीय है कि, 'हज़रत जिबरील अलै० हज़रत मुहम्मद सल्ल० से पूरे रमज़ान, हर रात आकर मिला करते थे और आप उन्हें क़ुरआन सुनाया करते थे।' इस हदीस से आसानी से यह अनुमान किया जा सकता है कि क़ुरआन मजीद को पूरे एक महीने में ख़त्म करना उचित और पसन्दीदा बात होगी। ऐसे ही बुख़ारी ही की वह हदीस, जिसमें हज़रत अब्दुल्लाह इब्न अम्र रज़ि० को नबी सल्ल० की यह खुली हिदायत दी गई बताई जाती है कि, 'क़ुरआन पूरे एक महीने में पढ़ा करो।' आपके इस कथन से स्पष्ट रूप से मालूम हो जाता है कि आम मुसलमानों के लिए क़ुरआन की तिलावत का यही तरीक़ा अल्लाह के रसूल का पसन्द फ़र्माया हुआ तरीक़ा है। हज़रत अब्दुल्लाह इब्न उम्र रज़ि० ने यद्यपि अपने असाधारण लगाव के कारण और अपनी तिलावत शक्ति का उल्लेख करके अन्त में हज़रत मुहम्मद सल्ल० से पूरा क़ुरआन

एक सप्ताह के भीतर ही पढ़ लेने की इजाज़त लेली थी, मगर ज़ाहिर बात है कि यह एक ख़ास इजाज़त थी, जो उनके बार-बार के आग्रह पर उन्हें दी गई थी, वरना शुरू में उनसे यही फ़र्माया गया था कि क़ुरआन एक महीने में पढ़ा करो।

इन हदीसों की रोशनी में यह विचार रसूल की इच्छा के ठीक मुताबिक़ ही था कि लोगों को क़ुरआन की तिलावत तीस दिनों ही में पूरी करने का सुझाव दिया जाये। इस बात के सामने आ जाने के बाद पूरे क़ुरआन को बराबर के तीस हिस्सों (पारों) में बांट देने जैसा उठाया गया क़दम, वास्तव में रसूल की इच्छा को किसी हद तक पूरा करना था।

इस सिलसिले में इस स्पष्टीकरण की कोई ख़ास ज़रूरत नहीं कि यह विभाजन मात्र परिणामात्मक विभाजन था और इसमें किसी सार्थकता या अनुकूलता की खोज बिल्कुल बेकार ही नहीं, बल्कि अकारण भी होगी। चुनांचे इस विभाजन में आपको कुछ स्थानों पर ऐसा भी नज़र आयेगा कि पारा तो ख़त्म हो गया है, मगर पहले से चलने वाली बात अभी ख़त्म नहीं हुई है और उसके बाक़ी हिस्से से अगले पारे का आरम्भ हो जाता है।

२. रुकूओं के निर्धारण व विभाजन के पीछे भी कुछ इसी तरह की मसलहत काम कर रही थी, जैसा कि पारों के विभाजन के पीछे थी। अर्थात यह कि आयतों के बीच ऐसे स्थानों की निशानदेही कर दी जाये, जहाँ क़ुरआन-पाठ का सिलसिला ख़त्म करने में कोई बेढंगापन न पैदा होता हो, न ही किसी प्रकार की कोई कमी महसूस की जाती हो। और इस 'निशानदेही' की ज़रूरत इसलिये महसूस की गई कि क़ुरआन के अर्थों को न जानने वाले लोग स्वतः यह निर्धारण नहीं कर सकते थे, क्योंकि जिस

किसी को आयतों का अर्थ ही न मालूम हो, वह यह कैसे जान सकता है कि पढ़ने का सिलसिला किस जगह ख़त्म करना उचित होगा और किस जगह अनुचित? वह तो निश्चय ही ऐसे स्थान पर भी अपनी ज़ुबान को रोक दे सकता है, जहां बात बिल्कुल ही अधूरी रह जाती हो। ज़ाहिर है कि यह बड़ी भोंड़ी और नापसन्दीदा हरकत होगी। अब मजबूरी और अनजानेपन के इस भोंड़ेपन से लोगों को बचाने की एक ही शक्ल थी और वह यही कि क़ुरआन मजीद में ऐसे स्थानों का निर्धारण कर दिया जाये, जहाँ अगर पढ़ना ख़त्म किया जाये, तो कोई इस तरह का दोष न पैदा हो।

लेकिन रुकूअ के इस निर्धारण के सिलसिले में एक और बात भी ध्यान में रखी गई है, कि यह निर्धारण हर उस जगह नहीं कर दिया गया है, जहाँ पढ़ने का सिलसिला सही तौर से ख़त्म किया जा सकता हो, बल्कि उसी के साथ आयतों की एक उचित संख्या को भी ध्यान में रखा गया है। पारा आम तौर से पन्द्रह-बीस रुकूओं में बांटा गया है और एक रुकूअ में औसत मात्रा की आठ-दस आयतें रखी गई हैं। छोटी आयतों की संख्या, मात्रा की रियासत से ज़्यादा और बड़ी आयतों की कम है। उल्लिखित 'निर्धारण' और 'निशानदेही' के सिलसिले में आयतों की एक उचित संख्या का यह विचार वास्तव में नमाज़ में क़ुरआन पढ़ने की ज़रूरत की दृष्टि से पैदा हुआ था, जिसमें हर व्यक्ति को क़ुरआन का कोई न कोई भाग ज़रूर ही पढ़ना पड़ता है, मानो रुकूओं के निर्धारण में यह बात भी सामने रही है कि यह निर्धारण क़ुरआन के इतने हिस्से के बाद हो, जितना कि एक रकात में आम तौर से पढ़ा जाता है या जिसे आम तौर से पढ़ा जाना चाहिये। और शायद इसी कारण आयतों के इन योगों का नाम 'रुकूअ' रखा गया है, क्योंकि नमाज़

में रुकूअ (झुकना), क़ियाम (खड़ा होना) और क़ुरआन-पाठ के बाद होता है, इसलिये यह नाम इस बात की ओर इशारा करता है कि अगर चाहो तो क़ुरआन मजीद का इतना भाग पढ़ लेने के बाद, क़ियाम को ख़त्म करके, रुकूअ में चले जाओ।

अहम पारिभाषिक शब्द

हर धर्म-ग्रन्थ की तरह क़ुरआन मजीद की भी एक विशेष भाषा और उसके कुछ प्रमुख पारिभाषिक शब्द हैं, जो उसके पैग़ाम और उसकी शिक्षाओं के मामले में बुनियादी अहमियत रखते हैं। कोई व्यक्ति क़ुरआन को कुछ भी नहीं समझ सकता, अगर वह पहले उसके पारिभाषिक शब्दों के अर्थ को समझ न चुका हो, इसलिए क़ुरआन मजीद का परिचय इस पर आश्रित है कि कम से कम इसके अहम और ख़ास ख़ास पारिभाषिक शब्दों की ज़रूरी व्याख्या सामने आ जाए।

अल्लाह

क़ुरआन मजीद का सबसे अहम और सबसे बुनियादी पारिभाषिक शब्द 'अल्लाह' है, इसलिएं सबसे पहले इसी का अर्थ समझ लेना चाहिए।

शब्द 'अल्लाह' वास्तव में 'अल-इलाह' था, जो अधिक प्रयोग से हल्की तबदीली के साथ 'अल्लाह' हो गया। 'अल-इलाह' में मूल शब्द केवल 'इलाह' है और इससे पहले जो 'अल' का अंश बढ़ा हुआ है वह अरबी भाषा का प्रत्यय है, जो किसी जाति-वाचक संज्ञा को व्यक्ति-वाचक संज्ञा बनाने के लिए शुरू में बढ़ा दिया जाता है, जैसे कि अंग्रेज़ी में The का प्रयोग है—इसलिए 'अल-इलाह' का अर्थ हुआ 'निश्चित व निर्धारित इलाह'। 'इलाह' का अर्थ 'उपास्य' है। यह शब्द 'अलिफ़' 'लाम' 'हा' के त्रिअक्षरीय धातु से बना है, जिसके अर्थ निम्न हैं—

१. चकित होना, २. किसी की पनाह में जाकर या उससे ताल्लुक़ पैदा करके सुख-शान्ति पाना, ३. किसी की ओर पूरे चाव से लपकना, ४. छिप जाना ५. बुलन्द होना, ६. पूजा करना।

ये अनेक अर्थ आपस में बेमेल और बेजोड़ नहीं हैं, बल्कि एक-दूसरे से सम्बन्ध रखते हैं, जो सोच-विचार के बाद बिल्कुल स्पष्ट हो जाते हैं। 'इलाह' के शब्द को अरबवासियों ने जब 'उपास्य' के लिए इस्तेमान किया तो उसमें इन तमाम अर्थों का प्रतिनिधित्व था। अर्थात् उनके यहाँ 'इलाह' उस सत्ता को कहा जाता था जो परामानवीय गुण रखती हो, जिसकी वास्तविकता और महानता का ज्ञान प्राप्त करने में मानव-बुद्धि विवश रह जाती हो, जिसकी ज़ात और गुणों में सोच-विचार का नतीज़ा हैरानी के अलावा और कुछ न हो, जो दूसरों को पनाह देने वाला हो, जिससे दूसरे प्रेम करें और जिसे पाना चाहें जो ज़रूरतें पूरी करने वाला हो, सत्तावान हो, शान वाला हो, जिस तक वाह्येन्द्रियों की पहुंच सम्भव ही न हो, और इन सारे गुणों से विभूषित होने के कारण इस योग्य हो कि उसकी उपासना की जाय, उसके प्रकोप से डरा जाए, उसे प्रसन्न रखने की कोशिश की जाए—लेकिन यह एक पूर्ण 'इलाह' का अर्थ था और चूंकि उनके यहां 'इलाह' और उपास्य एक-दो न थे, बल्कि अनगिनत थे और एक से अधिक उपास्यों को मानने की शक्ल में यह सम्भव नहीं था कि वे सभी को इन गुणों का पोषक समझते, इसलिए इस शब्द (इलाह) को जब वे बोलते, तो हर मौक़े पर उसका ठीक एक ही अर्थ नहीं लेते, बल्कि अगर वे ऐसी सत्ता को इसका चरितार्थ समझते थे जो उपरोक्त तमाम गुणों की पोषक होती, तो साथ ही ऐसी हस्तियों पर भी उसे लागू करते, जो उनके विचार से, केवल

कुछ ही गुणों की पोषक होतीं। इस तरह सच्चाई यह मालूम हुई कि अरबवासियों के नज़दीक 'इलाह' का अर्थ एक ऐसी सत्ता थी, जिसमें उपरोक्त गुणों में से कुछ, या सब मौजूद पाई जाती हो और इस आधार पर वह वन्दना की अधिकारी हो। अगर वह इन तमाम गुणों की पोषक हो तो पूर्ण 'इलाह' है वरन् निम्न स्तर का इलाह।

शब्द 'इलाह' के इस अर्थ को अगर सामने रखिए तो 'अल्लाह' (अर्थात 'अल-इलाह') का अर्थ प्रत्यक्ष में, कोई ऐसी विशेष और निश्चित सत्ता होगा, जिसमें उपरोक्त सारे गुण या उनका कोई अंश मौजूद हो। लेकिन स्थिति यह नहीं है, अरबों के यहां 'अल्लाह' का अर्थ केवल इतना ही नहीं था, बल्कि इससे बहुत ऊंचा था। वह 'अल्लाह' उस 'ज़ाते ख़ास' को कहते थे, जिसके बारे में उनका विश्वास यह था कि वह उन तमाम गुणों की पोषक है और उसके सिवा बाक़ी दूसरे तमाम पूर्णता-प्राप्त गुण, जैसे पैदा करने, रचने, पालने-पोसने, विकास के साधन जुटाने, रोज़ी देने और शासन करने आदि सरीखे गुणों की भी स्वामी है, जबकि अपने दूसरे उपास्यों के बारे में उनका अक़ीदा यह था कि उनमें से कोई भी ऐसा नहीं, जिस में ये सारे गुण मौजूद हों, बल्कि जिसमें पाया जाने वाला कोई गुण भी ठीक उसी स्तर और उसी पद का हो, जो स्तर और पद कि अल्लाह के भीतर पाए जाने वाले इस गुण का है। ('अल्लाह' और 'उपास्यों' के बारे में उनके इन अक़ीदों और विचारों का विस्तृत विवेचन क़ुरआन मजीद में भी मौजूद है और पुराने अरबी साहित्य में भी)

यहाँ पहुंच कर यह बात अपने आप समझ में आ जाती है कि अरबों के यहाँ असंख्य 'इलाहों' में से सिर्फ़ इसी एक ख़ास 'इलाह' को 'अल्लाह' (अल-इलाह) क्यों कहा जाने लगा? ऐसा क्यों हुआ

कि वह शब्द, जो वास्तव में विशेषण था, और उनके हर 'उपास्य' के लिए इस्तेमाल किया जा सकता था, सिर्फ़ उसी एक ज़ात के लिए ख़ास हो गया और उसका नाम बन गया? जब उनका अक़ीदा यह है कि सिर्फ़ एक ही हस्ती है जो तमाम गुणों का योग है और दूसरे तमाम उपास्यों में से कोई भी उपास्य होने की यह शान नहीं रखता, तो बिल्कुल स्वाभाविक बात थी कि उनकी नज़र में वह हस्ती शब्द 'इलाह' के इस्तेमाल की सर्वप्रथम अधिकारी होती, इस शब्द को सुन कर उनका ज़ेहन सबसे पहले उसी की ओर जाता, बल्कि सच तो यह है कि असल 'इलाह' और उपास्य वे इसी को समझते और फिर उसका प्राकृतिक परिणाम यह निकलता कि उन्होंने जहां अपने दूसरे उपास्यों के अलग-अलग स्थायी नाम रख लिए थे, जिनसे वे जाने-पहचाने और याद किए जाते थे, वहां इस मुख्य उपास्य का वे अलग से कोई नाम न रखते, बल्कि इसी शब्द 'इलाह' को जो वास्तविक गुण था, व्यक्ति-वाचक चिन्ह (अल) के साथ उसका नाम क़रार दे देते, ताकि इस तरह उसके उपास्य होने की विशेष, व्यक्तिगत और ऊंची हैसियत का प्रदर्शन हो जाए। यह स्पष्ट रहे कि 'इलाह' या उपास्य होने का सबसे ज़्यादा, बल्कि वास्तविक अधिकार इसी हस्ती को प्राप्त है जिस तरह कि किसी अनुपम पुस्तक का नाम 'अल-किताब' और किसी अद्वितीय 'मुअल्लिम' (अध्यापक) का नाम 'अल—मुअल्लिम' रख दिया जाए। अरब में नाम रखने का यह एक जाना-पहचाना तरीक़ा था और इसी के अनुसार उन्होंने अपने इस मुख्य उपास्य और पूर्ण 'इलाह' का नाम 'अल-इलाह' रख लिया और फिर अपने भाषायी व्याकरण के तहत इसमें से 'इलाह' का 'अलिफ़' (इ) निकाल दिया, क्योंकि ऐसे शब्द को उनकी भाषायी रुचि हल्के से हल्का और मुंह से आसानी के साथ

अदा हो जाने वाला रखना चाहती थी, जो अधिकता से प्रयोग में हो और जिसका नाम ज़ुबानों पर बार-बार आए। इस तरह यह 'अल-इलाह', 'अल्लाह' हो गया।

यह था अरबों के यहां 'इलाह' और 'अल्लाह' के शब्दों का अर्थ। जब क़ुरआन उतरा तो, चूंकि उसके प्रथम सम्बोधित जन यही अरब थे, जिसके कारण उसकी भाषा भी अरबी रही, और उसे जो बात भी कहनी थी, इसी भाषा के शब्दों और मुहावरों में कहनी थी, इसलिए उसने सृष्टि के रचयिता व पालनहार को भी स्वभावतः उसी नाम 'अल्लाह' से पुकारा, जो अरबों में प्रचलित था। इसी तरह 'इलाह' का शब्द भी उसने इस्तेमाल किया, मगर इन दोनों शब्दों को उसने ठीक उन्हीं अर्थों और विचारों के साथ नहीं लिया, जो अरबों के ज़ेहन में था, बल्कि कुछ अहम सुधारों और बुनियादी संशोधनों के साथ लिया।

१. सबसे अहम सुधार और बुनियादी संशोधन तो उसने यह किया कि 'इलाह' और 'अल्लाह' होने के तमाम गुणों को केवल अल्लाह के लिए मुख्य कर दिया। उसने कहा कि किसी दूसरी हस्ती में, भले ही वह बहुत बड़ी हो, 'उपास्य' होने का एक गुण भी मौजूद नहीं, इसलिए चाहे 'इलाह' कहो, चाहे, 'अल इलाह' और 'अल्लाह', इससे तात्पर्य वास्तव में वही एक ज़ात होगी। उसी एक हस्ती के लिए ये शब्द इस्तेमाल किए जा सकते हैं और किए जाने चाहिएं। दूसरी कोई हस्ती इन शब्दों से पुकारे जाने के योग्य नहीं। निःसन्देह उसने अपने कलाम में जगह-जगह 'इलाह' का शब्द उन अर्थों में भी इस्तेमाल किया है, जो अरबों के ज़ेहनों में थे। पर स्पष्ट है कि यह उनके अक़ीदे की नक़्ल और परम्परा के रूप में है, न कि ख़ुद अपने अक़ीदे को प्रकट करने के रूप में।

२. दूसरा बड़ा सुधार उसने यह किया कि इस व्यक्तिवाचक संज्ञा 'अल्लाह' के साथ अरबवासी जिन अच्छे गुणों को जोड़ते थे, यद्यपि वे उसकी दृष्टि में उत्कर्ष-बिन्दु को पहुंचे हुए थे, मगर उसने उन्हें अपूर्ण कहते हुए फ़र्माया कि तुम्हारी अल्प बुद्धि ने 'उपास्य' होने का जो सबसे ऊंचा स्थान समझ रखा है, वह वास्तव में अपने भीतर बहुत कुछ गिरावटें भी रखता है और गुणों के उत्कर्ष के बारे में तुम्हारी कल्पना ग़लत और अधूरी है। 'अल्लाह' के गुण इस प्रकार के हैं और उसका स्थान यह है:—

'अल्लाह' की हस्ती को क़ुरआन ने जिन गुणों से विभूषित किया है, वे संख्या में बहुत हैं। संक्षेप में यह समझिए कि कोई अच्छा गुण नहीं, जो इसमें मौजूद न हो। इनमें से उभरे हुए गुण ये हैं:—

१. वह और सिर्फ़ वही हमेशा से है और हमेशा रहेगा 'अल्लाह के अलावा कोई इलाह नहीं, हय्य (अमर), क़य्यूम (सदैव क़ायम रहने वाला)।' —सूरः बक़रः

'हर चीज़ नाशवान् है अलावा उसके।' —सूरः क़सस

२. वह आकार नहीं रखता और आकार से मुक्त है। आंखें उसे पा नहीं सकतीं। (सूरः अनआम) उस जैसी कोई वस्तु नहीं। (सूरः शूरा)

३. वह कभी कोई आकृति नहीं धारण करता, न तो किसी वस्तु में प्रवेश करता है, न किसी चीज़ से जुड़ता है। 'वास्तव में कुफ़्र किया उन्होंने, जिन्होंने कहा, अल्लाह तो मसीह इब्न मरयम ही है।' (सूरः माइदः)

४. हर चीज़ का पैदा करने वाला है और पूरी 'सृष्टि' उसी की

रचना है। उसी ने हर चीज़ को पैदा किया।'

(सूरः अनआम)

५. वह न किसी का बाप है, न किसी का बेटा। 'न उसने जना, न वह जना गया।' (सूरः इख़्लास)

६. सारी सृष्टि की शासन-सत्ता, प्रत्यक्षतः उसी के हाथ में है। ('उसी के हाथ में हर चीज़ की शासन-सत्ता है।')

(सूरः यासीन)

७. आसमान से लेकर ज़मीन तक, पूरी सृष्टि की व्यवस्था वही चलाता है। 'आसमान से ज़मीन तक वही व्यवस्था चलाता है।' (सूरः सज्दा)

८. सब को रोजी देने वाला और पालने वाला है। 'आसमानों और ज़मीन और जो कुछ उनके बीच है, सब का पालनहार है।'

(सूरः साफ़्फ़ात)

९. ज़िन्दगी और मौत दोनों का पैदा करने वाला है। 'उसी ने पैदा किया मौत और ज़िन्दगी।'(सूरः मुल्क) वही ज़िन्दगी और मौत देता है। 'वही है, जो मौत देता है और ज़िन्दगी भी।'

—सूरः नज्म

१०. सब की अमान और पनाह है। ' अमान देने वाला है।'

(सूरः हश्र)

११. ढका और छिपा, गुज़रा हुआ और होने वाला, सब कुछ जानता है। 'वह हर चीज़ का ज्ञान रखता है।' (सूरः बक़रः) 'गुज़री और होने वाली का जानकार है।' (सूरः हश्र)

१२. सब कुछ सुनता है। 'और वही सुनने वाला और जानने वाला है।' (सूरः अनआम)

१३. हर बात पर क़ुदरत रखता हैं। 'निस्सन्देह अल्लाह हर चीज़ पर क़ुदरत रखता है।' (सूरः बक़रः)

१४. सब पर ग़ालिब है और कोई उसके फ़ैसले या हुक्म को चैलेन्ज नहीं कर सकता। 'प्रभुत्वशाली, प्रभावशाली, अत्यन्त महान।' (सूरः हश्र)

१५. हकीम (तत्वदर्शी) है, उसका कोई काम हिकमत से ख़ाली नहीं होता। और वह हकीम है, सब कुछ जाने वाला।' (सूरः सबा)

१६. बड़ा दयावन्त है। 'अति कृपाशील और बड़ा दयावन्त है।' (सूरः फ़ातिहा) प्रेम व स्नेह उसकी रीति है। 'अल्लाह अपने बन्दों से स्नेह रखता है।' (सूरः बक़रः) उसकी रहमत और मेहरबानी कण-कण पर छाई हुई है। 'मेरी रहमत हर चीज़ तक फैली है।' (सूरः आराफ़)

१७. न्यायी है, लोगों के साथ पूरे न्याय का बर्ताव करता है। 'ताकि वह न्यायपूर्ण बदला दे उन लोगों को, जो ईमान लाए और जिन्होंने नेक अमल किए।' (यूनुस) किसी पर लेश मात्र भी अत्याचार नहीं करता। और मैं बन्दों पर ज़ुल्म नहीं करता।' उसके हुक्म और हिदायतें सब की सब पूरी तरह न्यायपूर्ण होती हैं।

१८. नाफ़र्मानों और सरकशों से बदला लेने वाला है। 'और अल्लाह ताक़त वाला और बदला लेने वाला है।' (आले इमरान)

१९. माफ़ी चाहने वालों को माफ़ कर दिया जाता है। और वह माफ़ करने वाला, दया करने वाला है' (सूरः बुरूज) और बड़ा हो तौब क़ुबूल करने वाला है। 'निःसन्देह वह बहुत ज़्यादा तौबा क़ुबूल करने वाला है।' (सूरः नस्र)

२०. नेकियों की बड़ी क़द्र करने वाला है। 'और अल्लाह क़द्र करने वाला है।' (सूरः तग़ाबुन)

२१. जिस का इरादा करता है, कर गुज़रता है। 'करता है, जिस का इरादा करता है।' (सूरः बुरूज)

२२. बात-चीत करता है। 'और उनमें कुछ ऐसे भी हैं, जिनसे अल्लाह ने बातें कीं। (सूरः बक़रः)

२३. जो चाहता है, करता है। 'ऐसे ही अल्लाह, जो चाहता है, करता है।' (आले इमरान) और जो कुछ चाहता है, सिर्फ़ वही वजूद में आ सकता है, यहां तक कि उसकी इच्छा के बिना कोई स्वतः कुछ चाह भी नहीं सकता। 'तुम नहीं चाह सकते, मगर यह कि अल्लाह जो चाहे।' (सूरः दहर)

२४. ग़नी है, हर बात से बे-नियाज़ है, उसे किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं। और अल्लाह ग़नी है।' (सूरः फ़ातिर)

२५. अपने आप में स्तुत्य और गुणों का योग है। 'निस्संदेह, वह स्तुत्य और गुणों का योग है।' (सूरः हूद)

२६. हर त्रुटि से पाक और हर कमाल वाला है। उसके भीतर कोई ऐसी बात नहीं पाई जाती, जो 'इलाह' होने की शान के मुताबिक़ न हो। 'सर्व-शासक, अत्यन्त गुणवान, शांति स्वरूप।' (हश्र)

२७. वह हर हैसियत से बे-मिसाल है, उसकी किसी चीज़ से भी उपमा नहीं दी जा सकती। 'उसकी मिसाल की कोई चीज़ नहीं।' (सूरः शूरा) ज़मीन व आसमान की किसी चीज़ पर भी उसका अनुमान नहीं किया जा सकता। 'आसमान और ज़मीन में उसकी सबसे ऊंची मिसाल है।' (सूरः रूम)

२८. उपास्य सिर्फ़ वही है। 'नहीं है कोई इलाह (उपास्य) मगर वह।' (सूरः बक़रः) पूरी सृष्टि में केवल उसी की बड़ाई चलती है। 'उसी की बड़ाई है आसमानों और ज़मीन में।' (सूरः जासिया) और उसके सिवा कोई भी नहीं, जिस के भीतर इस उपास्य होने और महान होने का कोई अंश भी पाया जाता हो, सब के सब विवश और शासित हैं और उसी के दास और बन्दे। 'और उसी के लिए है, जो कुछ आसमानों और ज़मीन में है। सब उस के मुहताज हैं।' (सूरः रूम) फिर ऐसा भी नहीं कि वह अपने इन दासों और बन्दों ही में से किसी को महत्ता प्रदान कर अपने ही सम्प्रभुत्व में शरीक कर लेता हो। उसके प्रभुत्व में कोई शरीक नहीं।' (सूरः कह्फ़)

अल्लाह की ज़ात और उसके गुणों के बारे में इन व्याख्याओं के बाद इस सम्बन्ध में कुछ बातें और भी हैं, जिन्हें जान लेना ज़रूरी है।

१. पहली बात तो यह कि जहां तक, 'अल्लाह' की ज़ात का ताल्लुक़ है, उसकी वास्तविकता तक मानव-चिन्तन की पहुंच सम्भव नहीं, इसलिए उसे केवल उसके गुणों से ही पहचाना जा सकता है, जिन के जलवों से यह पूरी सृष्टि भरी पड़ी है, और यहां जो कुछ है, वह सब का सब उसके किसी न किसी गुण ही का प्रतीक है। यही कारण है कि साहिबे क़ुरआन सल्ल० ने यह हिदायत फ़र्मा रखी है कि:—

'अल्लाह की रचनाओं में चिन्तन-मनन करते रहो, मगर ख़ुद उसकी ज़ात के बारे में इसकी कोशिश न करो।'

—रूहुलमआनी, भाग २७, पृ० २८

अल्लाह की ज़ात की हक़ीक़त का मानवीय चिन्तन-मनन में उच्च होना एक खुली हुई सच्चाई है। चुनांचे मनुष्य की चिन्तन

शक्तियों और पहुंचों का जिस व्यक्ति को भी अन्दाज़ा होगा उससे यह बात छिपी नहीं रह सकती कि 'अल्लाह' की ज़ात तो बहुत बड़ी चीज़ है, साधारण से साधारण रचनाओं का हाल यह है कि उनके बारे में हमारा ज्ञान केवल उनके गुणों ही तक पहुंच कर रह जाता है और उनकी ज़ात की हक़ीक़त बड़ी हद तक हमारे लिए एक रहस्य ही रह जाती है। फिर उस ज़ात की हक़ीक़त को पा लेना हमारे लिए कैसे सम्भव है जो अन्य सारी रचनाओं से मौलिक रूप से भिन्न है, जो हर हैसियत से अनुपम है, जिसकी कोई और चीज़ बराबरी कर ही नहीं सकती, जो रचयिता है, जबकि उसके सिवा हर चीज़ रचित है, जिसका हर गुण उत्कर्ष-बिन्दु को पहुंचा हुआ और शाश्वत व प्राचीन है, जबकि इस पूरी सृष्टि में दूसरा कोई नहीं, जिसका एक गुण भी इस प्रकार का हो? तात्पर्य यह है कि मानवचिन्तन के बस की अगर कोई चीज़ है, तो वह अल्लाह के मात्र गुणों का ज्ञान है, उसकी ज़ात की हक़ीक़त तक पहुंचना बुद्धि की दृष्टि से एक असम्भव बात है, इसलिए क़ुरआन मजीद ने अपनी वार्त्ता केवल गुणों ही की बहसों तक सीमित रखी है।

इस समस्या-अल्लाह की ज़ात और गुणों की समस्या—के सिलसिले में कुछ और प्रश्न भी उठाये जा सकते हैं, जैसे यह कि गुण ठीक 'ज़ात' हैं, या इससे अलग अपना कोई स्थायी अस्तित्व रखते हैं? अगर अलग वजूद रखते हैं तो ज़ात के साथ उनका ताल्लुक़ किस प्रकार है? वे किस तरह ज़ात के अन्दर पाये जाते हैं? लेकिन ये स्पष्ट रूप से विशुद्ध दार्शनिक वार्त्ताएं हैं, जो मनुष्य से सत् स्वभाव की नहीं, बल्कि वास्तव में उसकी चिन्तन-मनन-शक्ति के अपने आप को न पहचाने की पैदावार हैं। क़ुरआन ने, न केवल यह कि इस प्रकार के प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं दिया है, बल्कि उनके उल्लेख को भी उचित नहीं समझा है

और अगर इस सिलसिले में उसने कुछ किया है तो केवल यह कि इन्सान को उसका अपना ज्ञान व विवेक-स्रोत याद दिला कर इस प्रकार के टेढ़े और भटका देने वाले सोच विचार से रोक दिया है। चुनांचे जब कुछ लोगों ने यह प्रश्न उठाया कि यह वह्य क्या चीज़ है और इसकी क्या हक़ीक़त है? तो उनसे कह दिया गया कि वह्य की हक़ीक़त तुम्हारे ज्ञान व विवेक में आने वाली चीज़ नहीं, तुम्हें बताया जाए तो क्या बताया जाए। तुम्हारी आचार-विचार-शक्ति का हाल तो यह है कि अगर उसके सामने वह्य की हक़ीक़त खोल दी जाए तो उसका नतीजा इतना भी न निकलेगा, जितना कि एक बच्चे के सामने किसी पेचीदा दार्शनिक समस्या पर भाषण कर देने का हो सकता है। (सूरः बनी इसराईल) इसके अलावा ऐसे प्रश्नों को न छेड़ने और उनके उत्तर न देने का एक कारण और भी था और वह यह कि इस तरह की बहसें उस मक़सद से दूर का भी ताल्लुक़ नहीं रखती थीं, जिस के लिए क़ुरआन उतरा था। हर किताबे इलाही की तरह क़ुरआन के उतरने का मक़सद सिर्फ़ हिदायत है, लोगों का नैतिक सुधार है, उनकी आत्मा को शुद्ध करना है, उनको नेकी और सच्चाई का उपदेश और उस जीवन–विधान की शिक्षा देना है जो सच्चे मालिक का पसन्दीदा और मान्य विधान है और जिस पर चल कर मनुष्य अपने जीवन का उद्देश्य पूरा कर सकता और अपना अन्जाम कामयाब बना सकता है—ज़ाहिर है, इस मक़सद के लिए उसे बस यह जान लेना काफ़ी है कि मेरा एक पैदा करने वाला मालिक है। उसके ये-ये गुण हैं और मेरे अपने ही लिए इन गुणों के ये तक़ाज़े हैं, लेकिन अगर वह इतने पर बस नहीं करता, बल्कि अनावश्यक विस्तार में जाने की टोह में पड़ता है, ज़ाते इलाही की हक़ीक़त पा लेना चाहता है, ज़ात और गुणों के ताल्लुक़ की स्थिति मालूम कर लेना

चाहता है, तो भले ही वह अपनी इस खोज के शौक़ को कितना ही उचित और वैज्ञानिक क्यों न समझे, मगर कोई किताबे इलाही उसे इस सम्बन्ध में किसी भी प्रकार का प्रोत्साहन नहीं दे सकती, बल्कि उसे अपने उतरने के मक़्सद के लिए बिल्कुल अनावश्यक और बेकार बता कर उससे रोकने ही का प्रयत्न करेगी।

२. दूसरी बात, जो इस महत्वपूर्ण समस्या के सिलसिले में याद रखने की है, यह है कि तमाम ऊंचाइयों को पहुंची गुणों की यह अधिकता ज़ात की अधिकता का परिचायक कदापि नहीं है, (जैसा कि कुछ धर्मों के मानने वालों ने कल्पना कर रखी है) बल्कि ये गुण और शक्तियां, सारी की सारी, उसी एक ज़ात 'अल्लाह' के भीतर समाई हुई हैं। इसीलिए क़ुरआन मजीद ने इस खुली हक़ीक़त को यह फ़र्मा कर और अधिक खोल दिया है कि:-

चाहे तुम 'अल्लाह' कह कर पुकारो, चाहे 'रहमान' कह कर, जो भी (अच्छा) नाम लोगे तो (इससे तात्पर्य अल्लाह ही की ज़ात होगी, इसलिए कि) सारे अच्छे नाम उसी के लिए हैं।

-सूरः बनी इसराईल

अर्थात तुम 'उपास्य होने' के जिस गुण और शक्ति को भी सामने रख कर 'उपास्य' की कल्पना करोगे, उससे तात्पर्य सदैव वही एक हस्ती होगी, जिसका नाम 'अल्लाह' है। यह न समझो कि अगर तुम ने दया व स्नेह के विचार को मन में रख कर 'रहमान' कहा, तो इससे तात्पर्य कोई और 'ज़ात' होगी और अगर कुछ दूसरी बातों और गुणों को सामने रख कर 'अल्लाह' कहा, तो इससे तात्पर्य कोई और ज़ात होगी।

निस्सन्देह स्थिति यही है कि यह दुनिया, जो हमारी नज़रों के सामने है, उसमें एक दूसरे से टकराती घटनायें वजूद में आती

रहती हैं, यहां दया–कृपा की वर्षा भी होती रहती है और प्रकोप के भूकम्प भी आते रहते हैं, यहां सुख–सुविधाएं भी मिलती रहती हैं और विपदाओं की आंधियां भी उठती रहती हैं, यहाँ स्वास्थ्य और जीवन भी है और बीमारी और मौत भी, यहाँ शान्ति–व्यवस्था भी है और दंगा–फ़साद भी, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि इन भिन्नताओं और विरोधाभासों के स्रोत भी अलग–अलग हैं और विभिन्न शक्तियों की मालिक विभिन्न हस्तियाँ हैं, जो उन्हें प्रदर्शित करती रहती हैं। सच्चाई तो यह है कि इन सारी घटनाओं का स्रोत केवल एक 'अल्लाह' है। यहाँ जो कुछ भी वजूद में आता है, उसी के हुक्म से आता है और वे सारी शक्तियां, जिनकी ये घटनायें सूचक हैं, उसी एक ज़ात के विभिन्न गुण हैं और सब के सब उसी में केन्द्रित हैं। कोई शक्ति अपना अलग से कोई स्थाई वजूद नहीं रखती, और कोई गुण नहीं, जिस की मालिक कोई और ज़ात हो।

३. तीसरी बात यह कि ये गुण, जिन से अल्लाह की ज़ात विभूषित है, सब के सब अच्छाई के ही गुण हैं और हर प्रकार की त्रुटियों और कमज़ोरियों से पाक हैं। इन में से किसी को भी बुराई का गुण नहीं कहा जा सकता। क़ुरआन मजीद ने ख़ुद इस बात को भी, कि अल्लाह हर तरह की कमज़ोरियों और त्रुटियों से पाक है, उसका एक स्थाई गुण बताया है:-

'वह अल्लाह (ऐसा है) जिसके सिवा कोई उपास्य नहीं, (तमाम दुनिया का) बादशाह है, (हर त्रुटि से) पाक व बरतर है, (हर ऐब से) पाक है।' -सूरः हश्र

और इस बात को स्पष्ट किया है कि:-

'उसी के लिए हैं सारे अच्छे गुण।' -बनी इसराईल

इस बारे में उन नापसंदीदा घटनाओं और कड़वे अनुभवों के कारण कोई उलझन न होनी चाहिए, जो संसार में बराबर पेश आते रहते हैं, क्योंकि ये घटनायें अपने सामयिक प्रभाव की दृष्टि से और बिल्कुल सीमित अर्थों में ना—पसन्दीदा होती हैं, अपने आख़िरी और सच्चे नतीजों, तथा तमाम मसलहतों की दृष्टि से और व्यापक अर्थों में ना—पसन्दीदा कभी नहीं होती। ठीक ऐसे ही, जैसे रोगी के शरीर पर डाक्टर के चीड़—फाड़ के औज़ारों का चलना या उसके मुंह में कड़ुवी दवाएं डालना, चमन के पौधों का माली के हाथों काटा—छांटा जाना, हत्यारों और बाग़ियों का अदालत की ओर से फांसी के तख़्ते पर चढ़ाया जाना प्रकट में ना—पसन्दीदा होने के बावजूद, वास्तव में ना—पसन्दीदा बिल्कुल नहीं हुआ करता, इसीलिए कि इस दुनिया में अगर वबाएं फूटती रहती हैं, अकाल पड़ा करते हैं, बाढ़ें आया करती हैं, ज़ालिमों, बदकारों और फ़सादियों को दौलत और इज़्ज़त की बहारें मिला करती हैं और भले लोगों को मुसीबतों के थपेड़े लगा करते हैं—तो यह इस बात का सुबूत नहीं कि इस संसार का ख़ुदा (अल्लाह की पनाह) ग़ाफ़िल, विध्वंसकारी, निर्दयी, अन्यायी, ख़ूनी, खिलन्डरा, और व्यर्थ के काम करने वाला है। क्योंकि इस प्रकार की घटनाओं में जो प्रत्यक्ष 'बिगाड़' दिखाई देता है, वह वास्तव में अपने पीछे बहुत बड़े 'बनाव' रखता है और प्रकट की टूट फूट महत्वपूर्ण 'निर्माण' का शीर्षक हुआ करता है। यह दूसरी बात है कि एक ओर तो बिगाड़ और तोड़ फोड़ के स्वभाव में भी शोर और हंगामा होता है, इस लिए हम उसकी ओर तत्काल आकृष्ट हो जाते हैं और देर तक टकटकी लगाए हुए देखते रहते हैं, जबकि बनाव व निर्माण के स्वभाव में शांति और ख़ामोशी होती है और उसकी ओर निगाहें कठिनाई ही से उठ पाती हैं। एक मकान जब बन रहा

होता है, उस समय कोई आवाज़ सुनाई नहीं देती, लेकिन जब वह गिरता है, तो बस्ती की बस्ती उसके धमाके से चौंक पड़ती है। दूसरी ओर ख़ुद इन्सान के भी स्वभाव का हाल यह है कि वह पसन्दीदा बातों के मुक़ाबले में ना–पसन्दीदा बातों का और ख़ुशी के मुक़ाबले में रंज का असर ज़्यादा क़ुबूल करता है। दस बातें अगर उसे ख़ुशी का सामान जुटाने वाली हों और सिर्फ़ एक बात ग़म की वजूद में आ जाये, तो यही एक बात उसके ज़ेहन पर छा जायेगी और वह दस बातों को मानो भूल–सा जायेगा। इन दोनों सच्चाइयों का स्वाभाविक फल यह होता है कि कम नज़र इन्सान हो रही घटनाओं का सही स्वरूप समझने से महरूम हो जाता है। स्पष्ट है कि बिगाड़ व विध्वंस को तो वह देख लेता है, मगर अन्दर की रचनात्मक कार्रवाइयों, मसलहतों और हिकमतों तक उस की नज़र नहीं पहुंच पाती, वरना इन घटनाओं में से कोई घटना ऐसी नहीं होती, जिस का फल बनाव व रचना के रूप में न निकले, इस लिए अल्लाह का वह गुण भी, जो इस घटना का कारण बना होता है, निश्चित रूप से रचनात्मक सौन्दर्य ही का गुण होता है।

४. चौथी बात यह कि इन अनेकों गुणों में कार्य–कारण की पूर्ण एकरूपता है। इन में से कोई गुण भी इस तरह काम नहीं करता कि उसके नतीजे में किसी दूसरे गुण के तक़ाज़े छूट जाएं। इसके विपरीत हर गुण की अपनी सीमायें हैं। वह एक विशेष सीमा–सन्तुलन की सीमा–तक जाता है और उल्लंघन के चिन्हों के नज़र आते ही अपने क़दम रोक लेता है। मिसाल के तौर पर अल्लाह का एक गुण 'रहमत' है, लेकिन उसके 'रहमान व रहीम' होने का अर्थ यह नहीं है कि अच्छे–बुरे सभी माफ़ कर दिए जायेंगे और वह अपने नाफ़रमानों को भी सज़ा न देगा, क्योंकि फिर वह आदिल (न्यायी), हकीम (तत्वदर्शी) और शकूर (क़द्र करने वाला)

कुछ न कहा जा सकेगा। ऐसे ही उसका एक गुण 'अपनी इच्छाओं में स्वतन्त्र' होने का है, अर्थात यह कि, वह जो चाहता है, करता है और जो चाहता है, सिर्फ़ वही वजूद में आता है लेकिन इसका यह अर्थ बिल्कुल नहीं है कि मनुष्य का अपना इरादा और अमल कुछ नहीं, अल्लाह ही जिसे चाहता है और जब चाहता है, किसी कारण और हक़ के बिना ही हिदायत दे देता और नेक बना देता है, और जिसे चाहता है, गुमराही और बदी की खाई में धकेल देता है, इसी तरह जिसे चाहेगा बख़्शा देगा और जिसे चाहेगा, जहन्नम में डाल देगा, बिना यह देखे हुए कि किस का अमल दुनिया में क्या रहा है, क्योंकि ऐसी हालत में उसके हकीम (तत्व–दर्शी) और आदिल (न्यायी) और हक़ शनास (सत्य–ज्ञानी) होने का कोई अर्थ ही बाक़ी नहीं रह जाता। चुनांचे यही हक़ीक़त थी जिसे समझाने के लिए क़ुरआन मजीद ने यह फ़र्माने के बाद कि, 'अल्लाह जिसकी चाहता है, तौबा क़ुबूल करता है'—यह कहना भी ज़रूरी समझा कि, 'और अल्लाह सब कुछ जानने वाला और हकीम है' (सूरः तौबा, १५) अर्थात कहीं यह न समझ लेना कि अल्लाह की इच्छा आंख बन्द कर के फ़ैसला करती है, नहीं, ऐसा हरगिज़ नहीं है, बल्कि वह जो कुछ भी फ़ैसले करती है, पूरे ज्ञान व सूचना के साथ और सत्य व न्याय के अनुसार ही करती है और उससे हिकमत व दानाई (तत्वदर्शिता व बुद्धिमत्ता) का कोई तक़ाज़ा भूलने नहीं पाता।

५. पाँचवी बात यह कि अल्लाह के गुणों को व्यक्त करने के लिए क़ुरआन ने जो शब्द इस्तेमाल किए हैं, उनमें से ज़्यादातर वही शब्द हैं जो इन्सानों के लिए भी इस्तेमाल किए जाते हैं, जैसे, अलीम (जानने वाला), ख़बीर (ख़बर रखने वाला), समीअ (सुनने वाला), बसीर (देखने वाला), अज़ीज़ (प्रभुत्वशाली), शकूर (क़द्र

करने वाला), रऊफ़ (मेहरबान), रहीम (दयावान), हकीम (तत्व–दर्शी), आदिल (न्यायी), और मुतकल्लिम (बातें करने वाला) आदि, लेकिन यह केवल शब्दों का इस्तेमाल है, जिस समय ये शब्द इन्सान के लिए बोले जाते हैं, उनकी वास्तविकता और उनके अर्थ कुछ और होते हैं, जब अल्लाह के लिए इस्तेमाल होते हैं तो दूसरे होते हैं। पहली शक्ल में उनका अर्थ बहुत ही सीमित और निचले दर्जे का होता है, जब कि दूसरी शक्ल में असीम और बहुत ऊंचे दर्जे का होता है। मिसाल के तौर पर इल्म (ज्ञान) के गुण को ले लीजिए। 'अलीम' (ज्ञानी, जानने वाला) अल्लाह भी है और इन्सान भी है। मगर अल्लाह का अलीम होना यह अर्थ रखता है कि:-

१. वह हर बात जानता है, भले ही उसका ताल्लुक़ किसी ज़माने, किसी जगह और किसी मामले से हो।

२. उसका यह जानना कभी ग़लत और सत्य के खिलाफ़ नहीं होता है।

३. यह ज्ञान उसका निजी गुण है, न कि किसी का दिया हुआ, न कहीं से हासिल किया हुआ।

४. सदा से है और सदा रहेगा, न कोई परिवर्तन होगा, न समाप्त होगा।

इसके विपरीत इन्सान का अलीम होना केवल यह अर्थ रखता है कि:-

१. वह बस कुछ थोड़ी सी बातों को जानता है और वह भी बहुत सीमित अर्थों में, भविष्य के बारे में उसका ज्ञान न होने के बराबर है, भूतकाल के बारे में भी वह कुछ बहुत दूर तक नहीं जा सकता, यहां तक कि वर्तमान को भी घेरे में नहीं ले सकता।

२. जो कुछ जानता है, ज़रूरी नहीं कि वह सही और सत्य ही हो।

३. उसका गुण निजी नहीं है, बल्कि अल्लाह का दिया हुआ है और किसी व्यक्ति को उतना ही प्राप्त होता है, जितना कि उसे दिया गया है।

४. जिस तरह वह स्वयं परिवर्तनशील है और समाप्त हो जाने वाला है, उसी तरह, बल्कि उस से भी ज़्यादा उसका यह गुण भी परिवर्तनशील और समाप्त हो जाने वाला है—तात्पर्य यह कि अल्लाह के अलीम होने और इन्सान के अलीम होने में उससे भी अधिक अन्तर है, जितना अन्तर कि पूरे समुद्र और वर्षा की एक बूंद में होता है।

ठीक यही मामला दूसरे तमाम गुणों का भी है।

इस सिलसिले में यह आपत्ति कोई आपत्ति न होगी कि जब वास्तविकता में इतना भारी अन्तर था, तो फिर क़ुरआन मजीद ने अल्लाह के गुणों को व्यक्त करने के लिए ऐसे शब्द इस्तेमाल ही क्यों किए? यह इस लिए कि आख़िर इसके सिवा और किया भी क्या जा सकता था? यह तो एक मान्य बात है कि क़ुरआन हम इन्सानों की ही हिदायत के लिए उतरा है और यह उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता था जब तक कि ग़ैब (भूत—भविष्य, प्रत्यक्ष—परोक्ष) की हक़ीक़तों से भी, जिनका कि अल्लाह के ये गुण एक अहम हिस्सा हैं, हमें सूचित न कर दिया जाता, क्योंकि यही हक़ीक़तें तो 'दीन' व हिदायत की असल बुनियाद थीं। अब प्रश्न यह है कि इन हक़ीक़तों की हमें किस तरह शिक्षा दी जाती? क्या इसका तरीक़ा इसके सिवा कोई और भी हो सकता था कि उन्हें हमारी (इन्सानी) भाषा ही में और हमारे शब्दों के ज़रिये से

ही बयान फ़र्माया जाता? स्पष्ट है कि इसके अलावा और कोई रास्ता सम्भव ही नहीं था, इसलिए ग़ैब के दूसरे मामलों की तरह अल्लाह के गुणों को बताने और समझाने के लिए भी उचित रूप से हमारे जाने–बूझे शब्द ही इस्तेमाल किए गए। अब रह जाती थी इस बात की आशंका कि कहीं कम समझ लोग शब्दों के एक होने की वजह से अल्लाह के गुणों का भी इन्सान के गुणों ही पर न अनुमान लगा बैठें तो उसूली और विस्तृत विवेचन, दोनों तरह से इसका पूरा–पूरा हाल बता दिया गया। उसूली तौर पर यह बात फ़र्मा दी गई कि 'कोई चीज़ भी अल्लाह जैसी नहीं।' (सूरः शूरा) 'आसमान और ज़मीन में, हर कहीं, उसी की शान सब से ऊंची है।' (सूरः रूम) विस्तार में जा कर अनेकों गुणों के लिए ऐसी व्याख्या कर दी गई जिन के बाद इस तरह की किसी-ग़लतफ़हमी की कोई सम्भावना ही बाक़ी नहीं रह जाती, जैसे, इसी इल्म के गुण ही की समस्या को ले लीजिए, क़ुरआन मजीद ने जहां अल्लाह को 'अलीम' फ़र्माया, वहीं जगह–जगह इसी 'अलीमियत' का स्पष्टीकरण इस तरह कर दिया कि 'वह हर बात को जानता है' (सूरः बक़रः) 'वह दिलों के भेद तक जानता है।' (सूरः आले इमरान) 'वह हर छिपी और खुली बात को जानता है (सूरः हश्र) 'वह पूरी सृष्टि की छिपी हुई हक़ीक़तों को (भी) अच्छी तरह जानता है।' (सूरः हुजुरात) इसी प्रकार दूसरे गुणों के सिलसिले में भी आवश्यक व्याख्यायें कर दी गयीं।

५. क़ुरआन मजीद ने अल्लाह की ज़ात और गुणों के विचार पेश करते समय, केवल एक ज़ेहन, आम इन्सानी ज़ेहन को सामने रखा है, न कि किसी वर्ग के ज़ेहन को और ऐसी बातों के कहने से बचने की पूरी कोशिश की है, जो आम लोगों की समझ से परे हों। दूसरे शब्दों में यह कि उसने इस बारे में 'आम' और 'ख़ास'

में कोई भेद नहीं किया है। ऐसा नहीं किया है कि 'ख़ास' लोगों के लिए तो कुछ और फ़र्माया हो और 'आम' लोगों के लिए कुछ और। ख़ास लोगों को कुछ ऐसे विचार दिए हों जो दर्शन की मात्र कल्पनाओं का योग हों और आम लोगों को ऐसे विचार दिये हों जो अनुभूतिपरक हों। इसके विपरीत उसने, बिना किसी अपवाद के, तमाम मनुष्यों के सामने अल्लाह की ज़ात और गुणों के विचार बिल्कुल एक ही तरह के रखे हैं। यह बात उस ने जिस भारी मसलहत की दृष्टि से अपनायी है, वह किसी ऐसे व्यक्ति पर छिपी नहीं रह सकती, जो यह जानता हो कि आसमानी किताबें वास्तव में किस उद्देश्य से उतरती रही हैं? और मानव–जीवन की वह कौन–सी क्रांति है जिसे लाने के लिए क़ुरआन उतरा है?

जब क़ुरआन मजीद अपने इस सब से अहम और बुनियादी शब्द 'अल्लाह' का इस्तेमाल करता है तो उसका अर्थ वह होता है, जो ऊपर की इस पूरी बहस के पढ़ने के बाद ज़ेहन में आता है। नहीं मालूम, किसी और धर्म और धर्म–भाषा का कोई पारिभाषिक शब्द इस अर्थ को ठीक–ठाक अदा कर सकता है या नहीं? अगर है तो 'अल्लाह' का अनुवाद उस शब्द में कर देने से कोई आपत्ति नहीं, वरना ज़ाहिर है, ऐसा करना किसी तरह सही न होगा।

नबी और रसूल

क़ुरआन का दूसरा सबसे अहम पारिभाषिक शब्द 'नबी' और 'रसूल' है। नबी और रसूल वह व्यक्ति होता है, जिस पर अल्लाह की हिदायत उतरती है, ताकि वह उस पर ख़ुद भी अमल करे और उसे अल्लाह के दूसरे बन्दों तक भी पहुंचाए।

'नबी' शब्द कोष में 'ऊंची ज़मीन' को भी कहते हैं और

'मार्ग–चिन्ह' को भी। इसी तरह 'रसूल' का शाब्दिक अर्थ 'भेजे हुए' है, भले ही वह कोई सन्देश हो या सन्देश–वाहक। उस व्यक्ति को, जिस पर अल्लाह की हिदायत उतरती है, 'नबी' इसलिए कहा गया है कि वह अपने पद की दृष्टि से तमाम इन्सानों से ऊंचा भी होता है और उनके लिए सफलता व मुक्ति के सीधे रास्ते का निशान भी होता है। इसी तरह उसे 'रसूल' इसलिए कहा गया है कि सृष्टि के शासक की ओर से उसी की जनता के पास 'भेजा हुआ' सन्देश–वाहक और दूत होता है, जो उन्हें उसके आदेश पहुंचाता है।

'नबी' और 'रसूल' के व्यक्तित्व के बारे में क़ुरआन मजीद ने निम्न स्पष्टीकरण किए हैं:–

१. वह इन्सान और सिर्फ़ इन्सान होता है, ठीक हमारे और आप ही जैसा इन्सान। चुनांचे, बिना अपवाद के सारे ही नबी अपने बारे में 'हम तुम्हारे ही जैसे इन्सान हैं' (सूरः इब्राहीम) का बड़े ही खुले शब्दों में एलान करते रहे हैं। फिर इन्सानों में से भी सिर्फ़ मर्दों ही को नबी बनाया जाता रहा है, औरतों में से किसी को इस काम के लिए कभी नहीं चुना गया। 'हमने तुमसे पहले रसूल नहीं भेजे, मगर मर्द, जिनकी ओर हम वह्य करते थे।' (सूरः यूसुफ़) नबी जब इन्सान थे, तो स्वाभाविक रूप से दूसरे इन्सानों की तरह भौतिक ज़रूरतें और इन्सानी तक़ाज़े भी वे रखते थे, जैसाकि फ़र्माया भी गया है, 'बेशक ये लोग खाना खाते और बाज़ारों में चलते–फिरते थे।' (सूरः फ़ुर्क़ान) और यह कि, 'हमने उनको बीवी–बच्चों वाला बनाया था।' (सूरः रअद)

इन सारी व्याख्याओं के बाद यद्यपि नबियों का इन्सान होना ही चमकते सूर्य की तरह स्पष्ट हो जाता है, मगर यह मामला क्योंकि अहम था इसलिए निषेधात्मक पहलू से भी किसी ग़लत

विचार की गुंजाइश बाक़ी न रहने दी गई। और स्पष्ट कर दिया गया कि नबी फ़रिश्ते नहीं होते थे। 'कहो, अगर ज़मीन में फ़रिश्ते आराम से चलते–फिरते होते, तो हम ज़रूर उन पर आसमान से रसूल फ़रिश्ते भेजते।' (बनी इसराईल) और न ऐसा है कि अल्लाह 'अवतार' धारण करता और स्वंय ही मानव–रूप धारण करके संसार में आ जाता हो। चुनांचे ईसाइयों के एक गिरोह ने जब यह कहा कि, 'अल्लाह ही मसीह इब्न मरयम है' तो क़ुरआन ने उसे 'कुफ़्र' क़रार दिया। 'निश्चय ही कुफ़्र किया उन लोगों ने जिन्होंने कहा, अल्लाह ही मसीह इब्न मरयम है।' (माइदः)

२. नबी और रसूल होना, अर्थात् नबूवत और रिसालत एक पद है, जिसके लिए अल्लाह की ओर से प्रमुख व्यक्तियों का चुनाव और नियुक्ति होती है। 'अल्लाह फ़रिश्तों और इन्सानों में से सन्देश-वाहक चुन लेता है। निस्सन्देह अल्लाह सुनने वाला और देखने वाला है।' (हज) इस सिलसिले में इन चुने हुए और नियुक्त होने वाले व्यक्तियों के न अपने इरादे का कोई दख़ल होता है, न अपनी किसी कोशिश का। इन्सान के अपने इरादे और कोशिश से यह चीज़ हासिल नहीं हुआ करती। यह अल्लाह ही है, जो इस बात का फ़ैसला किया करता है कि अपना रसूल किसे बनाए। 'अल्लाह जानता है कि वह अपना रसूल किसे बनाए।' (अनआम) ज़िक्र व फ़िक्र (चिंतन-मनन) और रियाज़त (तपस्या) से मनुष्य आध्यात्मिक स्तर की दृष्टि से बहुत ऊंचा उठ सकता है और अपने भीतर आध्यात्मिक विशेषताओं का रंग पैदा कर ले सकता है, लेकिन यह सम्भव नहीं कि वह अपने इन मुजाहदों (तप-तपस्या) के बल पर रिसालत-पद तक पहुंच जाए, क्योंकि जैसाकि अभी मालूम हुआ, नबूवत एक पद और ड्यूटी है और कोई पद, केवल अपनी

कोशिशों से नहीं मिला करता, बल्कि किसी अधिकार प्राप्त हाकिम के फ़र्मान और नियुक्ति ही से मिला करता है। इसलिये नबूवत भी, जो अल्लाह का दिया हुआ एक महान पद है, उसी को मिल सकती है, जिसके लिये सृष्टि और मनुष्य के वास्तविक शासक को नियुक्ति-आदेश लागू हो चुका हो।

३. नबी जो हिदायत भी देता है और दीन व शरीअत के तौर पर जिस बात की भी नसीहत करता है, वह उसकी अपनी ओर से नहीं होती, बल्कि अल्लाह की ओर से होती है। हर नबी लोगों से यही कहता रहा है कि, 'मैं तुम्हें अपने पालनहार ही के हुक्म सुना रहा हूं और उसी का सन्देश पहुंचा रहा हूं।' (आराफ़) और जब नबी की हर बात अल्लाह की ओर से होती है तो इस का अर्थ यह हुआ कि उसका आज्ञापालन करना, वास्तव में अल्लाह का आज्ञापालन करना और उसकी नाफ़रमानी वास्तव में अल्लाह की नाफ़रमानी है, जैसाकि स्पष्ट शब्दों में कहा भी गया है कि, 'जिसने रसूल का आज्ञापालन किया, उसने अल्लाह का आज्ञापालन किया।' (सूरः निसा) और यह कि 'हमने (यानी अल्लाह ने) जिस रसूल को भी भेजा, इसीलिये भेजा कि अल्लाह के हुक्म के मुताबिक़ उसका आज्ञापालन किया जाए।' (निसा) ख़ुद 'रसूल' का शब्द भी बताता है कि सही बात यही हो सकती है, क्योंकि 'अल्लाह के रसूल' अर्थात् 'अल्लाह के भेजे हुये' होने का अर्थ ही यह है कि वह जो कुछ कहेगा, अपनी निजी हैसियत से और अपनी ओर से नहीं कहेगा, बल्कि अपने भेजने वाले की ओर से कहेगा और इसलिए उसका आज्ञापालन या अवज्ञा न होगी, बल्कि अल्लाह, संसारों के पालनहार ही का आज्ञापालन और उसी की अवज्ञा होगी।

इन व्याख्याओं से 'नबी' और रसूल के क़ुरआनी पारिभाषिक

शब्द का जो अर्थ निश्चित होता है, आपने महसूस कर लिया होगा कि ख़ुदा तक पहुंच, मज़हबी बड़ाई और बुज़ुर्गी ज़ाहिर करने वाले दूसरे अनगिनत शब्दों के अर्थों से वह बुनियादी तौर पर भिन्न है। बुज़ुर्ग, वली, पीर, फ़क़ीर, साधु-सन्त, गुरु, ऋषि, मुनि और इसी तरह के दूसरे शब्दों में से कोई शब्द भी ऐसा नहीं, जो इस विचार को व्यक्त कर सके, इसलिये क़ुरआन का यह पारिभाषिक शब्द अपनी हक़ीक़त और हैसियत की दृष्टि से एक ऐसा शब्द है, जिसके विचार और अर्थ को स्पष्ट करने के लिये उसी को इस्तेमाल किया जाना चाहिये और अगर किसी दूसरे शब्द से इसका अनुवाद किया भी जाये तो उसी शक्ल में, जबकि वह ठीक-ठीक उसी विचार को पेश करता हो और लोग उसे सुनकर उसका यही अर्थ समझते हों। फ़ारसी भाषा का शब्द 'पैग़म्बर' इसी तरह का एक शब्द है।

आख़िर में 'नबी' और 'रसूल' के एक अन्तर को भी समझ लेना चाहिए। यह अन्तर इन दोनों शब्दों के इस्तेमाल का है। क़ुरआन मजीद ने यद्यपि इन दोनों ही शब्दों को उस विशेष अर्थ में लिया है, जिसकी व्याख्या अभी हमारे सामने आ चुकी है, लेकिन 'नबी' का शब्द उसी परिभाषा और उसी अर्थ के लिये मुख्य है, 'रसूल' का शब्द इस तरह मुख्य नहीं है। 'नबी' का शब्द तो ऐसा है कि क़ुरआन जब भी उसे बोलता है, उससे निश्चित रूप से वही 'ख़ास इन्सान' नज़र आता है, जिस पर अल्लाह की वह्य उतरी हुई होती है। लेकिन 'रसूल' का शब्द 'नबी' का समानार्थी शब्द होने के साथ-साथ अधिक स्थानों पर अपने शाब्दिक अर्थों में भी प्रयुक्त हुआ है अर्थात वह 'नबियों' के लिये भी बोला गया है और ग़ैर-नबियों के लिये भी। जगह-जगह फ़रिश्तों को भी 'अल्लाह के रसूल' कहा गया है, इसलिये कि वे भी अल्लाह की

ओर से विभिन्न ड्यूटियों पर नियुक्त और 'भेजे हुये' होते हैं। अब रहा यह सवाल कि फिर 'रसूल' के शब्द को कुरआन के भीतर कहां नबी क' ़मानार्थी समझा जाये और कहाँ शाब्दिक अर्थों में लिया जाये? ा इस बारे में सन्दर्भ का ही सहारा लेना होगा, जो स्पष्ट रूप से हर जगह आपको मौजूद मिलेगा।

वह्य

कुरआन मजीद का तीसरा पारिभाषिक शब्द 'वह्य' है। 'वह्य' उस हिदायत को फ़र्माया गया है, जो अल्लाह की ओर से नबी पर उतरती है।

'वह्य' का मूल शाब्दिक अर्थ 'तेज़ इशारा' है, भले ही वह हाथ से हो, निगाह से हो, सिर्फ़ आवाज़ से हो, बातों से हो, लेखों से हो। मतलब यह कि जिस तरह से भी हो, फिर क्योंकि 'इशारा' किसी को किसी बात से 'बा-ख़बर' बनाने ही के लिये होता है, दूसरी ओर इसमें 'गुप्तता' का अर्थ भी शामिल होता है, इसलिये इस शब्द का अर्थ ख़ुफ़िया सूचना देने, छुपे हुए रूप से कुछ कहने और दिल में कोई बात डाल देने के लिये भी हो गया। इस शब्द की धातु 'ईहा' है, जिससे बनने वाली क्रियायें इन्हीं सब अर्थों में और किसी विशिष्टता के बिना हर वस्तु के लिये इस्तेमाल होती है, कुरआन मजीद में ये क्रियायें अल्लाह, इन्सान, शैतान सभी के लिये इस्तेमाल होती हैं, लेकिन जब बात इन क्रियाओं के इस्तेमाल की न हो और ख़ुद वह शब्द 'वह्य' बोला जा रहा हो तो फिर उस समय अर्थ और प्रयोग की यह सीमा ख़त्म हो जाती है और इससे तात्पर्य मुख्य रूप से केवल वह कलामे हिदायत होता है, जो नबियों को अल्लाह की ओर से मिलता है और ऐसे तरीक़े से मिलता है, जो आम इन्सानी हवास की पकड़ से परे होता है अर्थात ख़ास 'वह्य' का शब्द कुरआन का एक विशेष पारिभाषिक शब्द है

और वह हर जगह इसी परिभाषा में बोला गया है, जबकि 'ईहा' और इससे बनी हुई क्रियाओं की हैसियत पारिभाषिक शब्द की नहीं है और वह अपने सामान्य शाब्दिक अर्थों में इस्तेमाल की गई है। 'वह्य' सिर्फ़ अल्लाह की ओर से होती है, जबकि 'ईहा' अल्लाह और ग़ैर-अल्लाह की ओर से होता है और हर जीव के लिए होता है।

नबियों पर उतरने वाली हिदायत को 'वह्य' इसीलिये कहा गया है कि उसका उतरना दूसरे इन्सानों की नज़रों से छिपा रहता है।

'वह्य' केवल अर्थों का नाम नहीं होती, बल्कि उसमें अर्थ, शब्द और शब्दों का क्रम, सब कुछ मौजूद होता है। अल्लाह की ओर से नबियों पर जो हिदायतें उतरती हैं, जिस तरह उसके अर्थ अल्लाह की ओर से होते हैं, वैसे ही उसके शब्द भी उसी की ओर से होते हैं और उन शब्दों का वह क्रम भी, जिससे कि वे वाक्य का रूप धारण करते हैं, उसी की ओर से होता है। इसीलिए इस 'वह्य' को खुले शब्दों में 'अल्लाह का कलाम' भी कहा गया है।

इस 'वह्य' (अर्थात क़ुरआन मजीद) के हज़रत मुहम्मद सल्ल० तक पहुंचने को 'नुज़ूल' (उतरना) या 'इन्ज़ाल' और 'तंज़ील' (उतारना या उतारा जाना) फ़र्माया गया है। यह 'नुज़ूल' क्या चीज़ थी और यह 'उतरने' या 'उतारे जाने' का अमल किस तरह वजूद में आता था? इस बारे में क़ुरआन और हदीसों से जो स्पष्टीकरण मिलता है, उसका खुलासा इस प्रकार है—

(क) अल्लाह का एक ख़ास फ़रिश्ता, जिसका नाम जिबरील है, उसका यह कलाम हज़रत मुहम्मद स० के क़ल्ब (हृदय) पर उतारा करता था--

'हे नबी! अमानतदार फ़रिश्ते (जिबरील) ने इस (क़ुरआन) को तुम्हारे क़ल्ब पर उतारा है।' -सूरः शुअरा

'—निश्चय ही उसने उसके (अर्थात अल्लाह के) हुक्म से उसे तुम्हारे क़ल्ब पर उतारा है।' —सूरः बक़रः

मतलब यह कि यही फ़रिश्ता क़ुरआन को हज़रत मुहम्मद सल्ल० तक पहुंचाने का ज़रिया था। अल्लाह जिस समय जितनी आयतें उतारना चाहता था, उन्हें हज़रत जिबरील के हवाले करके आपके पास भेज देता और वह पूरी अमानतदारी और ज़िम्मेदारी के साथ इन आयतों को लाकर आपके क़ल्ब पर नाज़िल कर देते। इस सिलसिले में उनकी हैसियत निश्चित रूप से सिर्फ़ एक माध्यम और आज्ञाकारी सेवक की थी, इसमें उनकी अपनी मर्ज़ी और राय का कोई दख़ल नहीं हुआ करता था, न तो अल्लाह के हुक्म के बिना वे कभी आते थे, जैसा कि दूसरी आयत के शब्द 'उस के हुक्म' से ज़ाहिर है और जैसा कि एक और आयत में ख़ुद उन्हीं की ज़ुबान से इस स्पष्टीकरण का उल्लेख है कि 'हे नबी! जब भी हम (वह्य लेकर) उतरते हैं,तेरे रब का हुक्म मिलने पर ही उतरते हैं' (सूरः मरयम) और न इस 'वह्य' और 'कलामे इलाही' में कोई कमी-बेशी या किसी प्रकार का कोई और परिवर्तन होने देते थे, जैसकि उन्हें 'अमानतदार फ़रिश्ता' कहकर स्पष्ट कर दिया गया है।

क़ुरआन मजीद में कुछ स्थानों पर इस बात को, कि जिबरील ने इस क़ुरआन को नबी सल्ल० के क़ल्ब पर उतारा है, इस तरह भी कहा गया है कि-

'यह (क़ुरआन अल्लाह की भेजी हुई वह्य के सिवा कुछ नहीं, जिसकी, ज़बर्दस्त ताक़तों वाले (फ़रिश्ते) ने इसे (अर्थात नबी को) शिक्षा दी है।'

इससे मालूम हुआ कि 'क़ल्ब पर उतरने' का अर्थ कोई मामूली क़िस्म का न था, जिसके बाद अल्लाह की यह वह्य अपनी असल शक्ल में, ज्यों की त्यों हज़रत मुहम्मद सल्ल० को याद हो जाती थी।

(ख) जिस वक़्त हज़रत मुहम्मद सल्ल० के मुबारक क़ल्ब पर वह्य का यह नुज़ूल होता था, उस वक़्त आपके अन्दर बहुत अधिक एकाग्रता पैदा हो जाती और आप अपने पास-पड़ोस से कट कर रह जाते, चेहरे का रंग लाल हो जाता और साफ़ नज़र आता कि आपके स्नायुयों पर बड़ा भारी बोझ पड़ा हुआ है और आप थके जा रहे हैं। सर्दी के दिनों में आपके माथे पर पसीने की बूंदें आ जातीं। (बुख़ारी) अगर आप सवारी पर होते तो कजावे से चरचराहट की आवाज़ें तक आने लगतीं। (फ़त्हुलबारी, भाग १) एक बार हज़रत हारिस इब्न हिशाम रज़ि० ने पूछा कि आप पर वह्य किस तरह उतरती है? फ़र्माया-'कभी तो इस तरह जैसे मेरे कानों में घंटियां बज रही हों। वह्य उतरने का यह अन्दाज़ मुझ पर बड़ा सख़्त गुज़रता है, फिर फ़रिश्ता अल्लाह का कलाम मुझे पहुंचाकर चला जाता है और मैं उसे पूरी तरह सुरक्षित कर चुका होता हूं और कभी इस तरह की फ़रिश्ता इन्सानी शक्ल में मेरे सामने आ मौजूद होता है और जो कुछ मुझे सुनाना होता है, सुना देता है और मैं उसका सुनाया हुआ कलाम याद कर लेता हूं।' इससे यह मालूम हुआ कि फ़रिश्ता दो शक्लों में आया करता था-एक इन्सानी शक्ल में, दूसरे अपनी असली शक्ल में। इस दूसरी शक्ल के बारे में आपका यह फ़र्मान कि वह मुझ पर 'ज़्यादा सख़्त' होती है ज़ाहिर करता है कि तेज़ी और सख़्ती की दृष्टि से पहली शक्ल भी ख़ाली न थी। इसका अर्थ यह हुआ कि फ़रिश्ते से वह्य का ग्रहण कर लेना बहरहाल एक असाधारण कार्य हुआ

करता था और उसे सीखने-सिखाने का जाना-पहचाना कार्य न समझना चाहिये। ऐसा समझ में आता है कि फ़रिश्ते से वह्य ग्रहण कर लेने के लिए आप वाह्येन्द्रियों से काम नहीं लेते थे, बल्कि अपनी आन्तरिक शक्तियों को इकट्ठा करके किसी और जगत में पहुंच जाते थे और इस तरह प्रकट जगत से उच्च होकर वह्य को अपने 'क़ल्ब पर उतार लेने' के योग्य हुआ करते थे। एकाग्रता की यह दशा, चेहरे की यह लाली, माथे का पसीने से यह तर हो जाना और कानों में यह घंटियों की-सी आवाज़ का महसूस होना, इसी बात का परिणाम हुआ करता था। बहरहाल सच्चाई का सही ज्ञान तो अल्लाह ही को हो सकता है। हमारे सामने वह्य के उतरने की यह बात जिस सीमा तक स्पष्ट है, वह केवल इतनी है कि इस प्रकार की दशा होती थी, जिसमें आप पर, फरिश्ता अल्लाह की वह्य उतारता और यह दशा खुले तौर पर जागने की अवस्था होने के बावजूद प्रकट जगत से कट जाने की होती थी, कुछ इसी तरह कट जाने की, जिस तरह की, हमारी हालत स्वप्न में हुआ करती है।

ये हैं वे बातें, जो वह्य उतरने की समस्या के बारे में हमें बताई गयीं और हमें मालूम हो सकी हैं।

अब रहा और अधिक खोज और छान-बीन का मामला यानी यह प्रश्न कि वह्य का यह नुज़ूल वास्तव में है क्या चीज़? तो यह प्रश्न दूसरे शब्दों में यह है कि वह्य की हक़ीक़त क्या है? लेकिन क्या आम इन्सान वह्य की हक़ीक़त को समझ सकता है? क़ुरआन का उत्तर है कि नहीं। चुनांचे जिन दिनों वह उतर रहा था, उसके हठधर्म विरोधियों ने सीधे-सीधे यह प्रश्न उठाया भी था कि यह वह्य क्या चीज़ है? तो उसके बारे में अल्लाह ने अपने नबी को हिदायत फ़र्माई कि 'कह दो, वह्य मेरे रब के (ख़ास) मामलों में से

है और तुम्हें बहुत कम ज्ञान दिया गया है।' (बनी इसराईल) अर्थात इन्सान जानने और समझने की जो प्राकृतिक क्षमतायें लेकर पैदा हुआ है, वे इतनी और ऐसी नहीं हैं कि उसके लिये वह्य की हक़ीक़त का समझ लेना सम्भव हो सके। तार्किक दृष्टि से देखिये तो यह एक उचित उत्तर था, क्योंकि नबूवत यद्यपि इन्सानों को ही दी जाती रही है, लेकिन वह सामान्य मानवीय शक्तियों से निश्चित रूप से एक बढ़ी हुई शक्ति है और इस की वास्तविकता केवल वही व्यक्ति समझ सकता है जिसे स्वयं यह सौभाग्य प्राप्त हुआ हो। कोई बच्चा अगर बुढ़ापे की अनुभूतियों को और कोई सीधा-सादा अपढ़ देहाती वैज्ञानिक तथ्यों को नहीं समझ सकता-हालांकि उसके अन्दर उन्हें समझ लेने की क्षमता कार्य रूप से नहीं होती, मगर मूल रूप से बहरहाल मौजूद होती है-तो नबूवत की विशेष बातों को कोई ग़ैर-नबी कैसे समझ सकता है, जबकि उसके भीतर समझ सकने की क्षमता मूल रूप से मौजूद नहीं होती। हां, किसी वस्तु की वास्तविकता और उसके मूल स्वरूप का ठीक-ठाक समझ लेना और बात है और इसका एक हल्का-सा अन्दाज़ा लगा लेना दूसरी बात है। पहली बात अगर हमारे लिये असम्भव हो तो ज़रूरी नहीं कि दूसरी भी असम्भव ही हो। इसके ख़िलाफ, वस्तुस्थिति इसके विपरीत ही हुआ करती है। कितनी ही वस्तुयें ऐसी हैं जिनकी वास्तविकताओं को नहीं पाया जा सका है, लेकिन फिर भी मिसालों के ज़रिए और पास-पड़ोस की अनेक जानकारियों की मदद से हमारे अनुमान की निगाहें उनके जलवों की झलक देख ही लेती हैं। वह्य और उसके नुज़ूल का मामला भी इसी तरह का है। निस्सन्देह हम नहीं जानते और नहीं जान सकते कि वह्य का मूल स्वरूप और उसकी वास्तविकता क्या है, लेकिन इसी के साथ हमारे ज्ञान और अनुभव में कुछ ऐसी चीज़ें

भी मौजूद हैं, जिनको अगर हमारा अनुमान 'सीढ़ी' बना ले, तो उसकी झलकियों का एक नज़ारा, दूर ही का सही, बहरहाल कर लिया जा सकता है। इन चीज़ों में सबसे अहम और खुली चीज़ सच्चे सपने हैं। इन सपनों का हाल यह है कि एक घटना जो अभी आइन्दा किसी वक़्त होने वाली है, एक सोते हुए व्यक्ति को, किसी हद तक इशारों में, अभी घटित होती दिखाई दे जाती है और इस तरह उसे कल होने वाली बात की सूचना एक ख़ास शक्ल में आज ही मिल जाती है। विचार कीजिये, आइन्दा होने वाली एक घटना, इन्सानी ज़ेहन को, जिस समय कि वह अपने पास-पड़ोस से बिल्कुल बे-ख़बर और बे-ताल्लुक़ होता है, पहले ही कैसे महसूस हो जाती है और कहां से और किस तरह उसे इसकी सूचना मिल जाती है? जिन लोगों को इस सृष्टि के पीछे किसी अनदेखी शक्ति का और कुछ ऊंचे तथ्यों का वजूद ही स्वीकार्य नहीं, वे तो इस बारे में न जाने क्या कुछ कहा करते हैं, लेकिन खुदा पर और उसकी बड़ाई पर यक़ीन रखने वाला इसके सिवा और कुछ नहीं समझ सकता कि यह वास्तव में आलमे बाला (ऊपरी जगत) का एक फ़ैज़ान (दया-कृपा) है, जिस से कभी-कभी बन्दों को नवाज़ा जाता रहता है अर्थात ग़ैब का जानने वाला और घटनायें घटित कराने वाला, उन्हें सपने की हालत में एक ख़ास तरीक़े पर, पहले से ही बता दिया करता है कि आगे इस तरह की घटना घटित होने वाली है। सपने में ग़ैब-जगत से कुछ बातों का इस तरह मालूम हो जाना एक ऐसी सच्चाई है, जिस का तजुर्बा बराबर इन्सान को होता रहता है। इस तजुर्बे के होते हुये 'वह्य' का नुज़ूल और अल्लाह की ओर से कुछ ख़ास बन्दों तक हिदायतों का पहुंचना, समझ में न आने वाली बात हो तो हो, मगर विचार न करने योग्य हरगिज़ नहीं रह जाती। हां, जब एक आम इन्सान यही नहीं जान

सकता कि खुद उसके ज़ेहन पर नींद की हालत में फ़्लां बात कैसे खुल गई और उसके इस सपने की वास्तविकता क्या है तो वह वह्य और वह्य के नुज़ूल की हक़ीक़त को कैसे जान सकता है?

हज़रत मुहम्मद सल्ल० ने फ़र्माया है कि 'मुसलमान के (सच्चे) सपने, नबूवत का छियालीसवां अंश है।' (तिर्मिज़ी) ऐसे ही खुद आप सल्ल० का हाल भी यह था कि वह्य के नुज़ूल की शुरूआत होने से पहले लगातार छः महीनों का ज़माना 'सच्चे सपनों' ही का ज़माना था, अर्थात इस मुद्दत में आप अक्सर सपने देखा करते और जो कुछ सपनों में देखते, वह बाद में एक सच्चाई बनकर नज़रों के सामने आ जाती, मानो यह ज़माना आपकी आम इन्सानी हालत और आप की नबूवत के बीच का एक 'अवकाश' था और ये सपने एक प्रकार से नबूवत की 'प्रस्तावना' थे। इन बातों से मालूम हुआ कि सच्चे सपनों के वजूद से वह्य और उसके नुज़ूल का हल्का सा अन्दाज़ा लगाया जा सकता है क्योंकि उन्हें वह्य का नबूवत के मामले से एक प्रकार की अनुरूपता प्राप्त है। शायद यह भी एक अहम मक़्सद और मसलहत थी, जिसकी दृष्टि से 'सच्चे और अच्छे सपनों' को नबियों ही के लिये ही ख़ास नहीं किया गया, बल्कि दूसरे लोगों के लिये भी आम रखा गया है और वह्य का सिलसिला ख़त्म हो जाने के बाद भी, सच्चे सपनों का दरवाज़ा क़ियामत तक के लिये खुला रखा गया है,ताकि वह्य के उतरने का, कम से कम एक आरम्भिक विचार कर सकने के लिये एक दूर की मिसाल और रहनुमाई हमेशा मौजूद रहे।

फ़रिश्ते

क़ुरआन मजीद में एक विशेष रचना 'फ़रिश्तों' का उल्लेख बहुत आया है और विभिन्न कारणों से यह शब्द भी क़ुरआन

मजीद के महत्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दों में से एक है। मुख्य रूप से इसीलिये कि यही फ़रिश्ते हैं, जिनमें से कुछ फ़रिश्ते नबियों तक अल्लाह की 'वह्य' पहुंचाने का ज़रिया रहे हैं, फिर इसलिये भी कि ये वे हस्तियां हैं, जिनकी महत्ता व महानता, आम तौर से लोगों के लिये 'फ़ित्ना' बनती रही है और जिनके सम्मान में अति करके इन्सान शिर्क, कुफ़्र और मूर्ति-पूजा की विनाशकारी गुमराहियों में फँसता चला आ रहा है। कहीं उन्हें 'अल्लाह की पनाह' अल्लाह की औलाद बना दिया गया, कहीं उन्हें अल्लाह के अनेक गुणों ही का दूसरा नाम समझ लिया गया और इस तरह देवी-देवताओं की कल्पना कर ली गई। इसलिये ज़रूरी है कि इनके बारे में भी क़ुरआन का विचार स्पष्ट रूप से समझ लिया जाए।

फ़रिश्ते आम इन्सान के लिये ग़ैब की हैसियत रखते हैं और हमारी इन्द्रियों की पकड़ से बाहर हैं, इसलिये 'वह्य' की तरह इन की भी असल हक़ीक़त हम नहीं समझ सकते और 'दीन' के मक़्सद व मसलहतों की दृष्टि से इसकी कोई ज़रूरत भी नहीं है। 'दीन' की दृष्टि से ज़रूरत जिस बात की है, वह केवल यह है कि हमें उन की हैसियत और उनके गुणों का ठीक-ठीक ज्ञान हो। इसीलिए यही ज्ञान हमें दिया भी गया है। क़ुरआन मजीद की आयतों और साहिबे क़ुरआन सल्ल० की व्याख्याओं की रोशनी में फ़रिश्तों की हैसियत और उनके गुण निम्न हैं—

१. फ़रिश्ते अल्लाह की एक बड़ी प्रतिष्ठित, उच्चपद प्राप्त और क़रीबी रचना हैं। 'बल्कि सम्माननीय बन्दे।'

(सूरः अम्बिया, २६)

२. ये सदैव अल्लाह के हुक्मों और इच्छाओं के पूरी तरह पाबंद रहते हैं। यद्यपि क़ुरआन यह तो नहीं बताता कि उनके

अन्दर अल्लाह के हुक्मों की खि़लाफ़वर्ज़ी करने की क्षमता ही नहीं, मगर इस सच्चाई को बार-बार ज़ाहिर करता है कि अमलन वे कभी नाफ़र्मानी नहीं करते और पूर्ण आज्ञापालन ही उनकी रीति है। 'और वे उसके हुक्म पर ही कार्य करते हैं' (सूरः अम्बिया, २७) अल्लाह की हम्द व तस्बीह (गुण-ज्ञान) और तक़्दीस (पावनता का बखान) में बराबर लगे रहते हैं। 'हम तुम्हारी हम्द के साथ तस्बीह करते हैं और तुम्हारी तक़्दीस करते हैं।' (सूरः बक़रः) और उन पर हर क्षण अल्लाह का भय छाया रहता है। 'और वे उसके भय से कांपने वाले होते हैं।'(सूरः अम्बिया, २८)

३. उनको असाधारण और अपार शक्तियां दी हुई हैं और उनकी संख्या असंख्य है, बल्कि उसके बारे में सोचा और अनुमान ही नहीं किया जा सकता।

४. उनकी हैसियत सृष्टि में 'राज्य-कर्मचारियों' की-सी है, जो अल्लाह के हुक्मों व हिदायतों के मुताबिक़ इस पूरी सृष्टि के कारख़ाने की व्यवस्था चला रहे हैं। हमारी इस दुनिया से लेकर सृष्टि के आख़िरी सिरों तक जो हुक्म लागू होते हैं, इन्हीं 'फ़रिश्तों' ही के ज़रिये होते हैं और होते इस तरह हैं कि उनकी अपनी राय और मर्ज़ी का इस सिलसिले में कभी कोई दख़ल नहीं होता, बल्कि उन्हें अपने स्वामी की ओर से जो हुक्म मिला होता है, बस उसी को वे पूरा करते हैं। इस तरह इन्हें असाधारण और अपार शक्ति दिए जाने का अर्थ इसके सिवा और कुछ नहीं कि जो महान कर्त्तव्य उन्हें निभाने को दिये जाते हैं, उनको ठीक-ठीक पूरा करने के लिए उन्हें पूरी शक्ति दी गई है।

५. पद की दृष्टि से उनके अनेक वर्ग हैं, जिनका ज्ञान अल्लाह के सिवा किसी को नहीं, हां मूल रूप से इनके दो वर्ग हैं—सामान्य वर्ग और विशेष वर्ग।

विशेष वर्ग—अर्थात विशेष फ़रिश्तों को क़ुरआन मजीद ने एक विशेष नाम 'रूह' से याद किया है। ये सामान्य फ़रिश्तों से ऊंची हैसियत के मालिक होते हैं और अल्लाह के अधिक निकट रहते हैं। अल्लाह के हुक्म पहले इन्हीं को मिलते हैं, जिसके बाद ये उन्हें लेकर निचले वर्ग के उन फ़रिश्तों तक पहुंचा देते हैं, जिनके 'विभाग' से उन हुक्मों का ताल्लुक़ हुआ करता है। इस विशेष वर्ग के प्रमुख का नाम 'जिबरील' है। याद होगा कि यही वह फ़रिश्ता है, जो नबियों तक अल्लाह की वह्य पहुंचाने का महान कर्त्तव्य निभाता रहा है और जिसने हज़रत मुहम्मद सल्ल० के 'क़ल्ब' पर क़ुरआन को उतारा था।'

इस्लाम

उस दीन का नाम, जिसकी दावत क़ुरआन देता है 'इस्लाम' है। इस्लाम का शाब्दिक अर्थ आज्ञापालन के लिए गर्दनें झुका देना और अपने-आप को सुपुर्द कर देना है। लेकिन जब यह शब्द शाब्दिक अर्थ के अलावा दीनी मानी में इस्तेमाल होता है तो उस समय इसका अर्थ अल्लाह के आगे झुक जाना और अपने-आपको उसके सुपुर्द कर देना होता है, मानो क़ुरआन मजीद ने अपने पेश किये हुये 'दीन' को 'इस्लाम' इसलिये कहा है कि यह शब्द उसकी वास्तविकता और उसके उद्देश्य का सही प्रतिनिधित्व करता था, क्योंकि इस्लाम का मक़्सद इसके सिवा और कुछ नहीं की अल्लाह के बन्दे अपने-आपको पूरी राज़ी-ख़ुशी के साथ उन हुक्मों के हवाले कर दें, जो उसने उन्हें क़ुरआन के ज़रिये दिए हैं।

निस्सन्देह केवल इसी 'दीन' की नहीं, बल्कि हर उस दीन की, जो अल्लाह की ओर से आया था, हक़ीक़त यही थी और बिना किसी अपवाद के सारे ही आसमानी धर्मों के आने का मक़्सद सिर्फ़ यह था कि लोग अपनी जिन्दगियाँ उसके सुपुर्द कर दें और इस

तरह अपने सच्चे स्वामी के आज्ञापालक बन जायें। इसलिए नैतिक दृष्टि से इनमें का हरेक दीन 'इस्लाम' ही था। स्वयं क़ुरआन मजीद ने इस सच्चाई को बार-बार बयान किया है कि बुनियाद और उद्देश्य की दृष्टि से सारे धर्म एक ही थे और जिस नबी पर जो किताब भी उतरी थी, वह वास्तव में 'इस्लाम' (अल्लाह का पूर्ण आज्ञापालन) ही का पैग़ाम लेकर उतरी थी, इसलिए जहाँ तक मूल स्वरूप का सम्बन्ध है, सिर्फ़ क़ुरआन के मानने वालों ही का नहीं, बल्कि पूरी मानव-जाति का दीन हमेशा से 'इस्लाम' ही रहा है और मानव-जाति ही पर क्या बस, वह तो यहां तक कहता है कि 'इस्लाम' ही पूरी कायनात का धर्म है (आले इमरान ८३) क्योंकि अणु से लेकर सूर्य तक, इस संसार की एक-एक वस्तु उन्हीं क़ानूनों का पालन कर रही है, जो उसके लिये उसके रचयिता ने तय कर रखे हैं, लेकिन इस सच्चाई के बावजूद कि सारे ही आसमानी धर्म अपने उद्देश्य और अपने स्वरूप की दृष्टि से 'इस्लाम' ही थे, जहां तक नियमित नामज़दगी का ताल्लुक़ है, क़ुरआन मजीद ने मुख्य रूप से केवल उसी 'दीन' को 'इस्लाम' कहा है जो उसका पेश किया हुआ है। इस प्रमुखता का कारण क़ुरआन और उसके पेश किये हुए इस धर्म की वह मुख्य और विशेष हैसियत है, जो उसे दूसरी आसमानी किताबों और दोनों के मुक़ाबले में हासिल है और जिसका सविस्तार परिचय 'क़ुरआन की प्रमुख विशेषतायें' की बहस में ऊपर गुज़र चुका है। इस 'दीन' की इस प्रमुख और विशेष हैसियत ने उचित ही उसे हक़ दे दिया कि 'इस्लाम' का शब्द सिर्फ़ उसकी सच्चाई और उद्देश्य ही का प्रतिनिधित्व न करे, बल्कि उसका नाम भी हो, जबकि दूसरे धर्मों की हद तक वह सिर्फ़ उनकी सच्चाइयों और उद्देश्यों ही का प्रतिनिधि रहा है। ठीक इसी तरह जिस तरह 'क़ुरआन' वास्तव में,

हर आसमानी किताब थीं, मगर नाम के तौर पर यह शब्द सिर्फ़ इसी एक किताब के लिए मुख्य कर दिया गया, जो हज़रत मुहम्मद सल्ल० पर उतरी है।

तात्पर्य यह कि यह भी क़ुरआनी दीन का एक प्रमुख गुण है कि नाम के सिलसिले में उसका सम्बन्ध किसी व्यक्ति या जाति से नहीं जोड़ा गया है, बल्कि अपनी वास्तविकता और उद्देश्य से जोड़ा गया है, जिसका फल यह है कि एक व्यक्ति इसका नाम ही सुनकर यह अन्दाज़ा कर ले सकता है कि यह धर्म क्या है और किस बात की ओर बुलाता है? जबकि संसार के दूसरे धर्म अपने नामों से इस तरह की कोई रहनुमाई नहीं दे सकते, क्योंकि इनका सम्बन्ध उद्देश्यों और सच्चाइयों के बजाय व्यक्तित्व और राष्ट्रीयताओं से है। ईसाइयत का नाम ईसाइयत इसलिये है कि उसके पेश करने वाले हज़रत 'ईसा' थे। बौद्धमत को बौद्धमत इसलिये कहा गया है कि इसके प्रवर्त्तक महात्मा 'बुद्ध' थे। ज़रतुश्ती मत का नाम अपने पेशवा 'ज़रतुश्त' के नाम पर है। यहूदियत इसलिये यहूदियत है कि बनी इसराईल (यहूदी जाति) में 'यहूदाह' क़बीला बड़ा महत्व और महानता हासिल कर गया था और दूसरे इसराईली क़बीले उसके सामने इस तरह फीके पड़ गये थे कि पूरी जाति ही पर इसका नाम हावी हो गया और फिर मूसवी शरीअत भी उसी के नाम से मशहूर हो गई। मगर क़ुरआन ने अपनी दावत और अपने दीन का सम्बन्ध हज़रत मुहम्मद सल्ल० के व्यक्तित्व या आपकी जाति से जोड़कर उसका नाम 'मुहम्मदियत' या 'अरबियत' या 'हाशिमियत नहीं रखा, बल्कि सिर्फ़ 'इस्लाम' रखा, जो उसकी उसूली और आलमगीर हैसियत और ऊंची शान का तक़ाज़ा था।

मोमिन और मुस्लिम

क़ुरआन मजीद के महत्वपूर्ण और स्पष्ट पारिभाषिक शब्दों में 'मोमिन' और 'मुस्लिम' भी हैं, जो वास्तव में एक ही बड़ी सच्चाई के दो रुख़ हैं। एक ज्ञानात्मक रुख़, दूसरा व्यावहारिक रुख़। इस लिए कहना चाहिये कि देखने में दो अलग-अलग पारिभाषिक शब्द होने के बावजूद वे वास्तव में एक ही हैं, जैसाकि आगे के विवेचन से स्पष्ट होगा।

'मोमिन' उस व्यक्ति को कहा गया है, जो क़ुरआन मजीद को, सही और उसके बताये हुए तरीक़े पर अल्लाह की किताब मान ले यानी यह कि उसने जिन अक़ीदों या उसूली बातों को अपनी दावत की बुनियाद बनाया है, उनका सच्चा होना सच्चे दिल से मान ले, और फिर ज़ुबान से भी उसका एलान कर दे। ये अक़ीदे पांच हैं और क़ुरआन के निम्नलिखित शब्दों में एक साथ आ गये हैं:—

'बल्कि नेकी सिर्फ़ उस आदमी की नेकी है जो मानता हो अल्लाह को, आख़िरी दिन को, फ़रिश्तों को, आसमानी किताबों को और नबियों को।' —सूरः बक़रः

१. 'अल्लाह को मानने' का अर्थ यह है कि सिर्फ़ उसी को 'इलाह्' और उपास्य मान लिया जाये और सभी पूर्णता प्राप्त गुणों और ईश्वर के गुणों को मुख्य रूप से उसी के लिए माना जाये। फिर इन गुणों के ज़रूरी तक़ाज़ों को पूरे का पूरा उसी के लिए मुख्य समझा जाये अर्थात उन सारे अधिकारों को भी और उन सारे हक़ों को भी उसी ज़ात के अन्दर केन्द्रित मान लिया जाये, जैसे, बन्दों को हुक्म देने और उनके लिए क़ानून बनाने का वास्तविक अधिकार, उनके बारे में फ़ैसले करने का अधिकार, प्रार्थनाएं सुनने और दुआएं क़ुबूल करने का अधिकार, उन्हें माफ़ करने या सज़ा

देने का अधिकार, उन्हें फ़ायदा या नुक़्सान, राहत या मुसीबत, तन्दुरुस्ती या बीमारी, ज़िन्दगी या मौत देने का अधिकार, इसी तरह अपना बेचून व चरा आज्ञापालन कराने का अधिकार, अपनी मर्ज़ियों को पूरी कराने का अधिकार, अपनी पूजा कराने का अधिकार-आदि (अल्लाह का यही और इसी तरह 'मानना' क़ुरआनी दावत और इस्लाम की असल बुनियाद है और इसको तौहीद का अक़ीदा कहते हैं)।

२. 'आख़िरी दिन को मानने' का अर्थ यह है कि एक ऐसे दिन के आने पर यक़ीन रखा जाए, जब यह दुनिया ख़त्म हो जायेगी, दुनिया की सारी व्यवस्था नष्ट हो जायेगी और इस ज़मीन पर एक जानदार भी बाक़ी न रहेगा, इसके बाद दुनिया के पहले इन्सान से लेकर आख़िरी इन्सान तक, सब के सब, दोबारा ज़िन्दा करके, अल्लाह के सामने पेश किये जायेंगे, जहां उनके सांसारिक कर्मों का पूरा रिकार्ड सामने आ जायेगा और एक-एक व्यक्ति का हिसाब लेकर नेकी का अच्छा और बुराई का बुरा बदला दिया जाएगा, अर्थात् जिस व्यक्ति का कर्म पत्र ईमान, अच्छे अमल और बन्दगी और आज्ञापालन का कर्म-पत्र होगा, उसे अल्लाह बेहतरीन नेमतों से भरा हुआ दूसरा जीवन देगा, जो हमेशा बाक़ी/ रहने वाला होगा और जिस व्यक्ति के कर्म-पत्र से ईमान के बजाए शिर्क व कुफ़्र, अच्छे और भले कामों के बजाय बुरे और ग़लत काम और बन्दगी और आज्ञापालन के बजाए असली मालिक से बग़ावत और सरकशी का सबूत जुट जायेगा, उसे कष्टों भरा जीवन दिया जायेगा और यही जीवन भी हमेशा बाक़ी रहने वाला होगा। (यह क़ुरआनी दावत और इस्लाम की सबसे अहम बुनियाद है, और इसे आख़िरत का अक़ीदा कहते हैं।)

३. 'फ़रिश्तों को मानने' का अर्थ यह है कि उनके वजूद को सही माना जाये और उन्हें ठीक-ठीक उन्हीं गुणों का मालिक़ समझा जाये, जिन की व्याख्या 'फ़रिश्ते' शीर्षक के अन्तर्गत ऊपर अभी गुज़र चुकी है।

४. 'आसमानी किताबों को मानने' का अर्थ यह है कि अल्लाह की ओर से मानव-जाति की हिदायत के लिए जितनी किताबें भी उतर चुकी हैं, उन सब को अल्लाह की किताब माना जाये। इनमें से जिन किताबों के बारे में इस बात की यक़ीनी गवाही क़ुरआन ने दे रखी है कि वे अल्लाह की उतारी हुई थीं, उन्हें तो निश्चय करके और नाम के निर्धारण के साथ किताबे इलाही माना जाए और जिनके बारे में यह गवाही मौजूद न हो, उनके बारे में सिर्फ़ 'ग़ैबी' और उसूली तौर से यह अक़ीदा रखा जाये कि ये सारी ना-मालूम किताबें भी अल्लाह की किताबें थीं।

आसमानी किताबों के मानने का एक ज़रूरी पहलू यह भी है कि मौजूद और मालूम किताबों में से हरेक को वही हैसियत दी जाए जो अल्लाह की ओर से उसे मिली हुई है। अमली तौर पर इसका मतलब यह है कि क़ुरआन मजीद को आख़िरी किताब समझा जाए, ऐसी आख़िरी किताब जिसने पिछली सारी किताबों को मंसूख क़रार दे दिया है और जिसकी अमली पैरवी ही पर अब हर व्यक्ति की निज़ात निर्भर है।

५. 'नबियों को मानने' का अर्थ यह है कि अल्लाह, शुरू से आख़िर तक, जितने नबियों को भेज चुका है, बिना किसी भेद-भाव के, उन सब को अल्लाह का नबी मान लिया जाए। इनमें से जिन लोगों का नाम लेकर क़ुरआन मजीद ने यह स्पष्ट कर दिया है कि वे अल्लाह के नबी थे, उन्हें तो नाम के स्पष्टीकरण और निर्धारण के साथ नबी माना जाए और बाक़ी के

बारे में नबी होने का अक़ीदा सिर्फ़ 'ग़ैबी' और उसूली तौर से स्वीकार किया जाए।

इस अक़ीदे का एक ज़रूरी पहलू यह भी है कि हज़रत मुहम्मद सल्ल० को अल्लाह का आख़िरी नबी माना जाए, और साथ ही यह भी माना जाए कि आप की पैरवी पूरी मानव-जाति के लिए ज़रूरी है अर्थात आप के नबी होने के बाद से इस दुनिया की आख़िरी घड़ी तक का ज़माना सिर्फ़ आप की नबूवत का ज़माना है। दूसरे तमाम नबियों में से हरेक की नबूवत का ज़माना अल्लाह के हुक्म से ख़त्म हो चुका है और अब किसी और की पैरवी अल्लाह के दरबार में क़बूल न होगी।

'मुस्लिम' उस व्यक्ति को कहा गया है जो 'मोमिन' होने के अमली तक़ाज़ों को पूरा करने के लिए कोशिशें करे, जो क़ुरआन और इस्लाम की पैरवी करने वाला हो, जो अल्लाह के हुक्मों के आगे अपने-आप को डाल दे। इस शब्द का अर्थ ही 'इस्लाम वाला' अर्थात अल्लाह का आज्ञापालक है। स्पष्ट है कि क़ुरआन को मानने और उसके बुनियादी अक़ीदों पर ईमान लाने का कोई अर्थ नहीं, जब तक कि उसके हुक्मों और हिदायतों की अमली पैरवी भी न की जाए। इसलिए जो व्यक्ति भी क़ुरआन को मानकर और उसके बुनियादी अक़ीदों पर ईमान लाकर 'मोमिन' बन जाता है, उसके बारे में स्वाभाविक रूप से, बल्कि निश्चित रूप से यही समझा जा सकता है कि अब वह हिदायत के इस पूरे योग को, जिस का नाम क़ुरआन और इस्लाम है, अपनी निजी ज़िन्दगी का हिदायत-नामा बना लेगा। यही वजह है कि क़ुरआन को मानते ही एक व्यक्ति सिर्फ़ 'मोमिन' ही नहीं, बल्कि 'मुस्लिम' भी क़रार पा जाता है।

'मुस्लिम' शब्द केवल एक गुण ही की हैसियत नहीं रखता, बल्कि वह क़ुरआन और हज़रत मुहम्मद सल्ल० के मानने वालों का नाम भी है। इसलिए स्पष्ट रूप से फर्माया गया है कि:–

'उसने तुम्हारा नाम मुस्लिम रखा है।' -सूरः हज

मानो जिस तरह क़ुरआनी दीन का सम्बन्ध किसी व्यक्तित्व या राष्ट्रीयता की ओर नहीं है, इसी तरह उसके मानने वालों का नाम भी ऐसे किसी सम्बन्ध से बिल्कुल परे है। उस का नाम अगर 'इस्लाम' है, तो इनका भी 'मुस्लिम' है और इस तरह विशुद्ध गुणवाचक स्वरूप रखने के कारण यह नाम भी अपने आधार की सैद्धांतिक हैसियत का स्वयं ही प्रतिनिधि है। अब यह और बात है कि दूसरे लोग अपने समुदायगत स्वभाव, अपनी पैतृक चिन्तन-शैली और अपने जाने-माने रिवाजों के कारण 'मुस्लिम' और 'मुहम्मडन' के अन्तर को न समझ सकें और उसके नतीजे में इस्लाम के अनुयायियों को 'मुस्लिम' कहने के बजाय 'मुहम्मडन' कहने लगें।

यही शब्द 'मुस्लिम' है जो फ़ारसी भाषा में 'अलिफ़' और 'नून' की वृद्धि के साथ 'मुसलमान' बन गया है।

कुफ़्र और काफ़िर

'कुफ़्र' 'ईमान' का विलोम एक पारिभाषिक शब्द है, जिसका शाब्दिक अर्थ 'छिपा देना' है। इसी तरह 'काफ़िर' का शाब्दिक अर्थ भी, जो इसी शब्द 'कुफ़्र' का कर्त्ता है, 'छिपा देने वाला' है। चुनांचे यह शब्द (काफ़िर) अरबी भाषा में उन बहुत सी चीज़ों के लिए विशेषण के तौर पर इस्तेमाल होता है, जो छिपा लेने का काम करती हैं, जैसे, रात, समुद्र और किसान आदि।

कुरआन की भाषा में 'कुफ़्र' दो अर्थों में इस्तेमाल हुआ है—एक तो अल्लाह की नाशुक्री के अर्थ में, दूसरे 'दीन' के बुनियादी अक़ीदों में से किसी अक़ीदे का इन्कार कर देने के अर्थ में। कहने को तो 'कुफ़्र' के ये दो अलग-अलग अर्थ हैं, मगर वास्तव में इस द्वत्व में भी बड़ी गहरी एकरूपता और स्वाभाविक एकता मौजूद है और अगर दोनों में कोई अन्तर है तो सिर्फ़ इतना, जितना कि बीज और इसके पौधे में, या सूरज और उससे निकल कर फैलने वाली रोशनी में हुआ करता है। वास्तव में नाशुक्री वाले कुफ़्र से ही इन्कार वाला कुफ़्र पैदा होता है और उसी का अनिवार्य फल है।

'कुफ़्र' के मूल शाब्दिक अर्थ और उसके पारिभाषिक अर्थ या अर्थों में जो ताल्लुक़ है, उसे समझने के लिये किसी लम्बी चौड़ी व्याख्या की ज़रूरत नहीं। नाशुक्रा और इन्कारी जो कुछ करता है, वह इसके सिवा और क्या होता है कि वह अल्लाह के एहसानों को 'छिपाता' है, उसके रब (पालनहार) होने के हक़ को 'छिपाता' है, अपनी गुलामी को 'छिपाता' है और आख़िर में यह कि अपनी मूल प्रकृति को 'छिपा चुका' होता है, वह मूल प्रकृति, जिसमें संसारों के पालनहार अल्लाह की एहसानमन्दी, बन्दगी और आज्ञापालन का भाव समाया हुआ है, तो अल्लाह की नाशुक्री को, या उसके गुणों या उसके तक़ाज़ों के इन्कार को अगर कुफ़्र कहा गया है तो यह उसकी अर्थपरक व्यापकता की दलील है।

'कुफ़्र' और 'काफ़िर' (अर्थात कुफ़्र वाले) के शब्द जब कुरआन में बोले जाते हैं तो आम तौर पर यही दूसरा अर्थ नज़रों में होता है अर्थात काफ़िर से तात्पर्य ऐसा व्यक्ति होता है जो अल्लाह के गुणों में से किसी गुण का इन्कार कर दे या उसके तक़ाज़ों का इन्कार कर दे और आख़िरत के दिन का इन्कार कर दे

या किसी पैग़म्बर को पैग़म्बर मानने से इन्कार कर दे या किसी किताबे इलाही को किताबे इलाही मानने से इन्कार कर दे।

'कुफ़्र' अर्थात इन्कार की श्रेणियां भिन्न हैं, जिस तरह कि ईमान की श्रेणियां भिन्न होती हैं, जैसे एक कुफ़्र वह है, जो सत्य की व्याख्या और स्पष्टीकरण के बावजूद किया जाता है और एक वह है, जिसकी बुनियाद 'न जानने' पर होती है। खुली बात है कि इन दोनों की हैसियत समान नहीं हो सकती, बल्कि सम्भव है कि कुफ़्र की कुछ शक्लें ऐसी भी हों, जो कुफ़्र होने के बावजूद अल्लाह के हुज़ूर क़ाबिले माफ़ी हों। न केवल यह कि ऐसा सम्भव है, बल्कि क़ुरआन के इशारों से तो लगता है कि यह सच है, जैसे, अगर किसी रसूल की दावत एक व्यक्ति तक नहीं पहुंची, या पहुंची तो, मगर ढंग से नहीं पहुंची और इसलिये वह उसकी रिसालत पर ईमान नहीं लाता, बल्कि उसका इन्कार और 'कुफ़्र' करता है, तो उसे निश्चय ही इस मामले में विवश समझा जायेगा, इसके विपरीत तौहीद का अक़ीदा (एकेश्वरवाद) है कि उनका इन्कारी किसी हाल में भी माफ़ नहीं किया जायेगा, क्योंकि तौहीद का विचार इन्सान के स्वभाव में रचा-बसा है और उसकी खुली हुई निशानियां हर नज़र के सामने और हर जगह मौजूद हैं। इसलिये इस स्पष्ट सच्चाई के इन्कार में इन्सान कभी भी विवश नहीं समझा जा सकता। इसी तरह यह भी सम्भव है कि कुफ़्र की कुछ शक्लें ऐसी हों जो कठोरतम दण्ड का कारण बनें और न सिर्फ़ आख़िरत ही में, बल्कि इस दुनिया की ज़िन्दगी में भी, जो बदले की नहीं बल्कि काम करने की जगह है, इन्सान को बुरे से बुरे अंजाम का हक़दार बना दें। चुनांचे क़ुरआन का बयान है कि यह भी एक हक़ीक़त ही है और दुनिया बीसियों बार इसका सबूत अपनी आंखों से देख चुकी है। इस तरह के कुफ़्र की खुली हुई

मिसाल उन लोगों का कुफ़्र है, जिन को ईमान की दावत सीधे-सीधे नबियों के ज़रिये मिली थी, जिस की वजह से उनके सामने हक़ के स्पष्टीकरण में हुज्जत (युक्ति) के पूरे करने में नाम की भी कोई कसर बाक़ी नहीं रह गई थी। ऐसे लोगों के सामने, जो कुछ आख़िरत के दिन पेश आयेगा, वह तो आयेगा ही, इस दुनिया में भी उन्हें सज़ा दी गई कि उनका बीज भी बाक़ी नहीं रह गया, या तो भूचालों, तूफ़ानों, ज्वालामुखियों और ओला-वर्षाओं के अज़ाब ने उन्हें पलक झपकते ही ख़त्म करके रख दिया, या फिर ईमान वालों की तलवारों से उनकी जड़ काट कर रख दी गई, और उन्हें ज़िम्मी की हैसियत से भी ज़िन्दा रहने का हक़ नहीं दिया गया, जबकि दूसरे कुफ़्र वालों के लिये उस हक़ से फ़ायदा उठाने का मौक़ा हमेशा बाक़ी रखा गया।

शिर्क और मुश्रिक

'शिर्क' का शाब्दिक अर्थ 'साझापन' है। शरअ की परिभाषा में 'शिर्क' का अर्थ यह है कि किसी भी ग़ैर-ख़ुदा को ख़ुदा की ज़ात में, या उसके गुणों में, या उन गुणों के तक़ाज़ों में शरीक ठहरा लिया जाये :–

१. ख़ुदा की ज़ात में शरीक ठहराने की कुछ शक्लें हैं–

(क) उसके वजूद को किसी और के वजूद से या किसी और के वजूद को उसके वजूद से क़रार देना अर्थात उसके बारे में मिल जाने या विलीन हो जाने का अक़ीदा रखना,

(ख) किसी को उसकी ज़ात-बिरादरी का समझना,

(ग) किसी को उसका बाप या बेटा क़रार देना।

२. ख़ुदा के गुणों में शरीक ठहराने का अर्थ यह है कि इन

गुणों में से किसी भी गुण को किसी और हस्ती के अन्दर भी मौजूद मान लिया जाये और इसी विशेष अर्थ में मौजूद मान लिया जाये, जिस अर्थ में कि वह अल्लाह के अन्दर पाई जाती है।

३. गुणों के तक़ाज़ों में शरीक ठहराने का अर्थ यह है कि इन गुणों के स्वाभाविक नतीजे के तौर पर जो अधिकार और हक़ अल्लाह ही के लिए साबित होते हैं, उनमें से किसी अधिकार या हक़ का किसी और को भी मालिक मान लिया जाए, जैसे ख़ुदा का एक गुण यह है कि हुक्म देने और फैसले करने का सारा अधिकार उसी को है। इस गुण का एक ज़रूरी तक़ाज़ा तो यह है कि भाग्यों के बनाने-बिगाड़ने का अधिकार उसी के वश में हो और दूसरा यह कि मुरादें, फ़रियादें और दुआयें सिर्फ़ उसी के हुज़ूर पेश की जायें। अब अगर कोई व्यक्ति मुसीबत पड़ने पर किसी और को पुकारता है या अपने किसी मक़्सद को हासिल करने के लिए अपनी मुरादें किसी और के सामने रखता है तो यह अल्लाह के एक विशेष गुण के तक़ाज़ों में शरीक ठहराना होगा।

जो व्यक्ति इस तरह के अक़ीदे रखता हो अर्थात अल्लाह की ज़ात में या उसके गुणों में या उन गुणों के तक़ाज़ों में किसी ग़ैर-ख़ुदा को शरीक और हिस्सेदार ठहराता हो, वह क़ुरआन की भाषा में 'मुश्रिक' कहलाता है।

शिर्क को क़ुरआन ने 'बहुत बड़ा ज़ुल्म' अर्थात अल्लाह की सबसे बड़ी हक़मारी क़रार दिया है और फ़र्माया है कि उसकी माफ़ी कभी न होगी।

'किताब वाले'

मूल शब्द 'अहले किताब' है, जिसका शाब्दिक अर्थ 'किताब

वाले' है, मगर क़ुरआन की परिभाषा में जिस तरह 'किताब' का एक विशेष और निर्धारित अर्थ है और इससे तात्पर्य केवल 'किताब इलाही' होता है, न कि सिर्फ़ किताब। इसी तरह 'किताब वालों' का भी एक विशेष और निर्धारित अर्थ है और इससे मुराद सिर्फ़ यहूदी और ईसाई हुआ करते हैं, न कि सारी ही आसमानी किताबों की मानने वाली मिल्लतें और जमाअतें। यह सही है कि जब किताब से तात्पर्य 'किताबे इलाही' होता है तो 'किताब वाले' का अर्थ भी 'किताब इलाही के मानने वाले' होगा और उसे कुछ ख़ास किताबों के मानने वालों तक सीमित होने के बजाय सभी आसमानी किताबों के मानने वालों पर लागू होना चाहिए, लेकिन जहां यह बात सही है, वहीं यह भी एक मानी हुई सच्चाई है कि इस समय संसार में जितनी भी धार्मिक पुस्तकें पाई जाती हैं, उनमें से केवल तीन ही किताबें ऐसी हैं, जिनके किताबे इलाही होने की क़ुरआन ने पुष्टि कर दी है—तौरात, इन्जील और ज़बूर। इसलिये वह जब 'अहले किताब' का शब्द इस्तेमाल करेगा, तो इससे उसकी मुराद स्वाभाविक रूप से केवल उन्हीं तीन किताबों के मानने वाले लोगों तक सीमित होगा।

तौरात के नाम पर वजूद में आने वाला समुदाय 'यहूदी' है और इन्जील के ज़रिये ज़ाहिर होने वाला समुदाय 'ईसाई' है। रही 'ज़बूर' तो उसके आधार पर तो कोई अलग से समुदाय वजूद में नहीं आया, जिसका कारण यह है कि यह कोई स्थाई पुस्तक है ही नहीं और इसकी हैसियत बस तौरात के परिशिष्ट जैसी है, जो मशहूर इसराईली पैग़बर हज़रत दाऊद अलै० पर नाज़िल हुआ था और जिसे यहूदी और ईसाई दोनों ही गिरोह मानते हैं।

इन तीनों किताबों के सिवा बाक़ी जिन किताबों को भी आज आसमानी किताब की हैसियत से माना जा रहा है, चूंकि उनके

उल्लेख से क़ुरआन बिल्कुल ख़ामोश है, इसलिए उसके प्रमाण और पुष्टि के आधार पर इनमें से किसी को किताबे इलाही और उसके अनुयायियों को 'किताब वाले' मान लिए जाने की कोई गुंजाइश नहीं। हां 'क़ियास (अनुमान) का दरवाज़ा ज़रूर खुला हुआ है, मगर ज़ाहिर है, क़ियास सही भी हो सकता है और ग़लत भी। इसलिए यह क़ुरआनी स्वीकृति व पुष्टि का स्थानापन्न कैसे भी नहीं हो सकता, हालांकि यहां बहस एक क़ुरआनी परिभाषा के अर्थ वह उद्देश्य की, दूसरे शब्दों में क़ुरआनी स्वीकृति व पुष्टि ही की है।

तात्पर्य यह है 'किताब वाले' की परिभाषा यहूदियों और ईसाइयों के लिए 'नाम' की हैसियत रखती है और किसी तीसरे गिरोह को उसके क्षेत्र में दाख़िल नहीं किया जा सकता।